जैन भारती

वर्ष 54 • अंक 10 • अक्टूबर, 2006

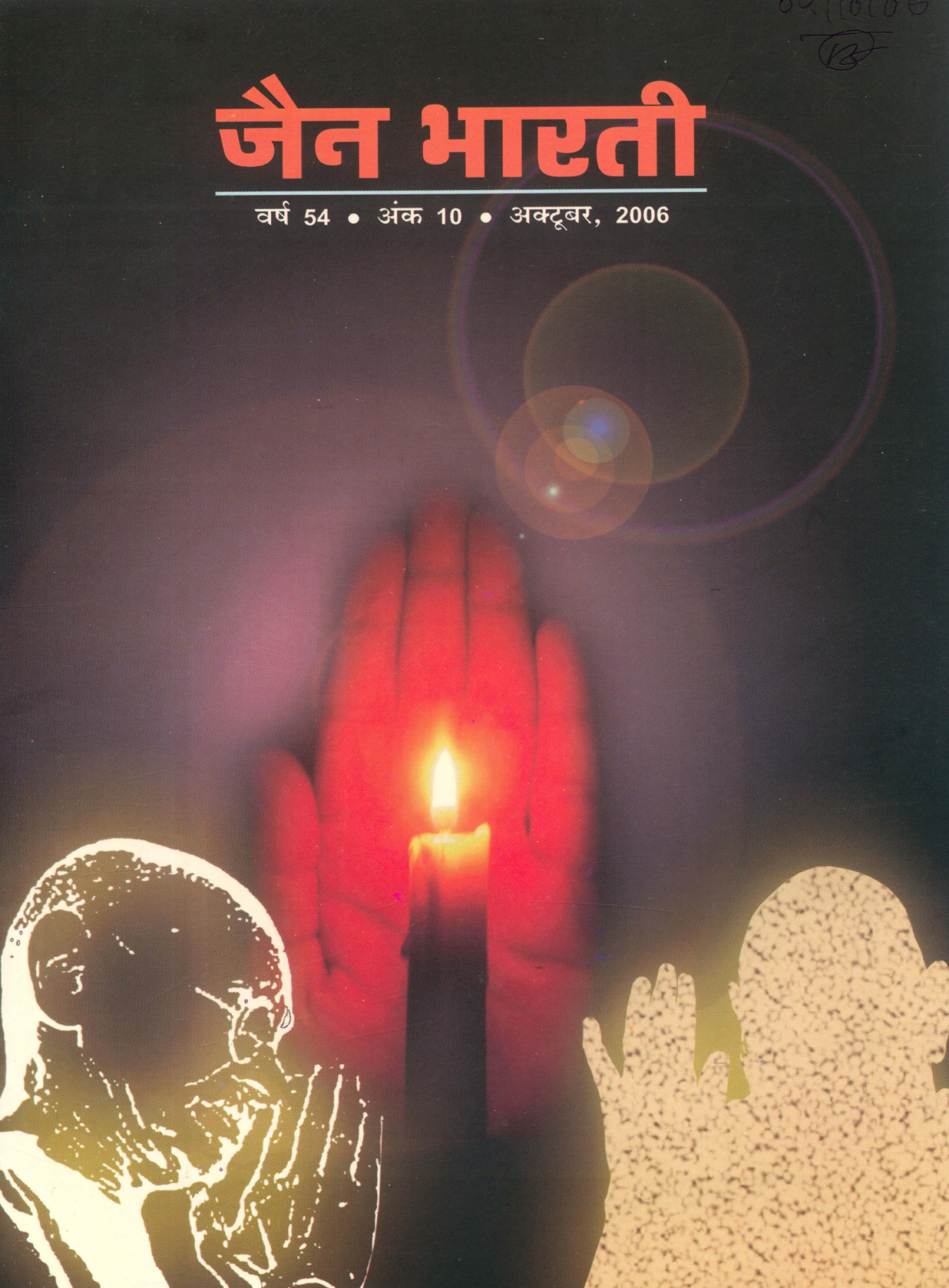

हार्दिक मंगल कामना

एक शुभ चिन्तक

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 54 • अक्टूबर, 2006 • अंक 10

विमर्श

11
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
अहिंसा : कुछ अपेक्षाएं

17
किशोरलाल घ. मशरूवाला
सत्याग्रह : एक शास्त्र; एक शस्त्र

21
साध्वी योगक्षेमप्रभा
द्रव्य मीमांसा : जैन दर्शन का योगदान

•

आवरण
अडिग

अनुभूति

27
समणी अमितप्रज्ञा
तुलसी—श्रीसंपन्न निस्पृह योगी

30
समणी सत्यप्रज्ञा
समझ : सहजीवन की बुनियाद

34
मुनि राकेशकुमार
विवेगे धम्ममाहिए

36
मुनि रमेशकुमार
सकारात्मक चिंतन : सफलता की सीढी

39
कहानी
श्रीनरेश मेहता
स्मृतिजीव्या

42
कविता
रमेशचन्द्र शाह की कविताएं

प्रसंग

7
शुभू पटवा
अहिंसा और मानवाधिकार

शीलन

45
समणी भावितप्रज्ञा
महावीर : सब-कुछ अहिंसात्मक

48
डॉ. महावीरराज गेलड़ा
आचारांग : वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में

55
बालकथा
मीनाक्षी बालगणेश
अगली छुट्टियों में दुबारा

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 0151-2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

चलो, झंझट मिटा

किसी के बीमारी होती है, तब वह हाय! त्राहि करने लग जाता है। तब स्वामीजी बोले—'ऐसा नहीं करना चाहिए। बीमारी होने पर दृढ़ रहना चाहिए।'

'जैसे किसी के सिर पर ऋण था। वह ऋण चुकाना नहीं चाहता था, किंतु ऋणदाता ने शक्ति-प्रयोग से अपनी पूंजी वापस ले ली। तब मूर्ख आदमी तो विलाप करता है और समझदार होता है, वह सोचता है—'चलो, मेरा ऋण चुका। बाद में ही देना पड़ता, तो पहले ही झंझट मिटा, सिर का ऋण उतर गया।'

इसी प्रकार बीमारी होने पर जो सयाना होता है, वह सोचता है—'बंधे हुए कर्म भोग लिए, चलो झंझट समाप्त हुआ।' यह सोच वह विलाप नहीं करता।

ऐसा है साधु का मार्ग

स्वामीजी बोले—'यदि मृत मनुष्य किसी के काम आए तो साधु सांसारिक दृष्टि से किसी गृहस्थ के काम आए। साधु के पास कोई व्यक्ति आया। वह वहां पांच रुपये भूल गया। कोई दूसरा उन्हें उठा ले गया। साधु जानता है—वे रुपए 'क' के हैं और 'ख' उन्हें ले गया। 'क' आकर पूछता है—'यहां मेरे रुपए रह गए, उन्हें कौन ले गया?' साधु उसे नहीं बताता कि 'ख' ले गया। क्योंकि उनकी केवल धर्म सुनाने की ही साझेदारी है। बाकी सावद्य कार्यों की दृष्टि से साधु गृहस्थ के कोई काम नहीं आता। ऐसा है साधु का मार्ग!'

यही भाव से भक्ति करेगा

एक व्यक्ति स्वामीजी से चर्चा करते समय अंट-संट बोलता था। तब स्वामीजी से किसी ने कहा—'महाराज! यह अंट-संट बोलता है, उससे आप क्या चर्चा करते हैं?'

स्वामीजी बोले—'छोटा बच्चा जब तक नहीं समझता है, तब तक वह अपने पिता की मूंछ को खींचता है और उसकी पगड़ी को भी उतार फेंकता है। किंतु समझ आने के बाद वही अपने पिता की सेवा-चाकरी करता है। इसी प्रकार यह जब तक साधुओं के गुणों को नहीं पहिचानता है, तब तक अंट-संट बोलता है। गुण की पहिचान होने के बाद यही भाव से भक्ति करेगा।' ●

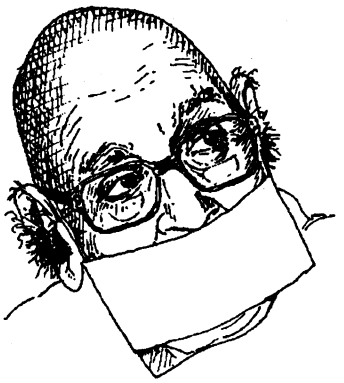

मनुष्य में दो प्रकार की वृत्तियां काम करती हैं—अधिकार की भावना और कर्तव्य-भावना। अधिकार के साथ स्वार्थलिप्सा, सुविधावाद, नाम और प्रतिष्ठा की बातें जुड़ी रहती हैं। जबकि कर्तव्य-बुद्धि या भावना से काम करने वाला इन सब बातों से बहुत दूर रहता है। जिस व्यक्ति में कर्तव्य-भावना गौण और अधिकार की भावना प्रधान है, वह सही अर्थ में कार्यकर्ता बन ही नहीं सकता। स्वार्थ और अधिकार की बात जहां भी आती है, कर्तव्य-भावना वहां गौण हो जाती है। स्वार्थी मनोवृत्ति का परिमार्जन करने के लिए 'स्व' और 'पर' की भावना को 'स्वत्व' के विस्तार में विलीन करना जरूरी है। जब तक कार्यकर्ता के मन में अपने और पराए की भेदरेखा रहती है, कर्तव्य-भावना पर स्वार्थ हावी हो जाता है। जबकि 'स्वत्व' का विस्तार होने के बाद हर व्यक्ति का 'सुख-दुख' उसका 'अपना सुख-दुख' बन जाता है। समाज के साथ उसकी इतनी सहानुभूति हो जाती है कि केवल अपने बारे में वह कुछ सोच ही नहीं सकता। इस वृत्ति का विकास होने से ही व्यक्ति निष्पक्ष होकर काम कर सकता है।

—आचार्यश्री तुलसी

'अध्यात्म' शब्द छोटा है, किंतु इसकी अर्थात्मा विराट् है। अध्यात्म और विज्ञान एक नहीं हैं, इसलिए दोनों में तुलना और समन्वय का प्रयास किया जाता है। समानता की खोज वहीं होती है, जहां दो हैं। अनेक असमानताओं के बावजूद अध्यात्म और विज्ञान, दोनों का लक्ष्य एक ही है—सत्य की खोज।

• • •

कषाय की तीव्रता जीवन में विकास की बहुत बड़ी बाधा है। भीतर में क्रोध और कषाय की आग प्रदीप्त है तो व्यक्ति न चाहते हुए भी पापाचार में प्रवृत्त हो जाता है। अध्यात्म की दिशा में प्रस्थान का अभीप्सु व्यक्ति कामासक्ति, अर्थासक्ति और पदासक्ति से ऊपर उठने का प्रयास करे।

• • •

समय आता है और चला जाता है। महत्व की बात है कि समय का प्रयोग कैसे किया जाए? जो समय का मूल्यांकन करता है, समय की पहचान करता है और समय का सदुपयोग करता है, वह महानता की दिशा में प्रस्थित हो जाता है।

—युवाचार्य महाश्रमण

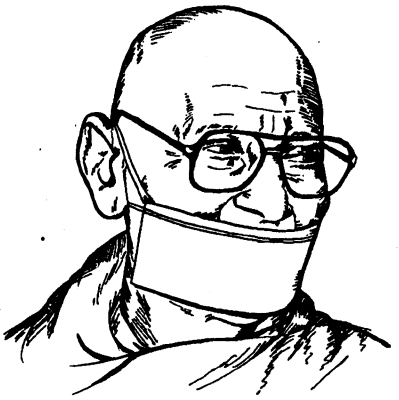

मनुष्य के पास शक्ति है, चेतना है, किंतु उसके पास एक तीसरी वस्तु नहीं है। वह तीसरी वस्तु है—आनंद। मनुष्य अपनी चेतना के द्वारा शक्ति का उपयोग करता है, किंतु शक्ति का सम्यक् उपयोग करना वह भी नहीं जानता। अपनी शक्ति का उपयोग करके वह स्वयं भी क्लांत होता है और दूसरों को भी क्लांत करता है। किसी का घोड़ा वह स्वयं बनता है तो किसी दूसरे को अपना घोड़ा बनाता भी है। वह स्वयं दूसरे पर चढ़ता है या दूसरे को अपने कंधों पर चढ़ाता है। किंतु इन सबमें वह आनंद का अनुभव नहीं कर पाता। आनंद का अनुभव वही कर पाता है—जिसके पास शक्ति हो, चेतना का विकास भी हो और चेतना तथा शक्ति का सही उपयोग हो।

पशुओं में चेतना है, पर उनका विकास नहीं है। वे उसका सही उपयोग करना नहीं जानते। मनुष्य में चेतना का विकास तो है, फिर भी उसका सही उपयोग वह नहीं कर पाता, इसलिए आनंद उपलब्ध नहीं हो पाता। पशु के लिए आनंद का प्रश्न ही नहीं उठता। जिसमें चेतना का विकास नहीं होता, उसमें आनंद का अनुभव करने की क्षमता भी नहीं होती। जिसमें चेतना का विकास है, उसमें आनंद का अनुभव करने की क्षमता होती है। जो चेतना का सही नियोजन कर पाता है, वह आनंद का उपभोग कर लेता है। जो चेतना का सही नियोजन नहीं कर पाता, वह आनंद का अनुभव नहीं कर सकता।

ध्यान-साधना के द्वारा व्यक्ति अपनी चेतना का इस प्रकार नियोजन कर सकता है कि सारी शक्ति आनंद की दिशा में प्रवाहित हो जाए और आनंद उपलब्ध हो जाए। आनंद का बाधक तत्त्व है—शक्ति, और आनंद का साधक तत्त्व भी है—शक्ति। शक्ति ही बाधा है और शक्ति ही साधक सामग्री है। शक्ति को ठीक दिशा में प्रवाहित करने पर आनंद प्राप्त होता है।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

प्रसंग

अहिंसा और मानवाधिकार

मानवाधिकारों की बात करते हुए अहिंसा पर ध्यान जाना स्वाभाविक है और यह भी कि जिन अनुच्छेदों में मानवाधिकारों की व्याख्या की गई है, उनमें अहिंसा किसी-न-किसी रूप से समाहित है। अहिंसा की बात हमारे यहां भगवान महावीर और बुद्ध से चली आ रही है। प्रभु यीशु ने जिस करुणा और प्रेम की बात की है, उसमें भी अहिंसा सन्निहित है। इस्लाम का शाब्दिक अर्थ भी शांति, समर्पण और सलामती है, जिसका तात्पर्य है कि इस्लाम में आस्था रखने वाले जन अशांति और दुर्व्यवहार की कल्पना भी नहीं कर सकते। जब यह कहा जाता है कि 'अस्सलामअलैहकुम'—तो मतलब होता है—'सलामती हो तुम पर' और पलट कर जब—'वअलैकुमअस्सलाम वरहमतुल्ला हे व बरकात हू'—कहते हैं तो मतलब होता है—'तुम पर अल्लाह की सलामती, रहमत और बरकत हो।' पुराण तो कहते ही हैं कि परपीड़न सबसे बड़ा पाप है। ये सभी मंतव्य 'अहिंसा' से अलग करके नहीं देखे जा सकते। जाहिर है कि अहिंसा एक ऐसा व्यापक फलक है जिसमें वे सभी बातें समाहित हो जाती हैं जो मानवाधिकारों के अनुच्छेदों में गुंफित हैं। विश्वव्यापी संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसंबर, 1948 को मानवाधिकारों की घोषणा की और यह दिन तभी से मानवाधिकार दिवस के रूप में घोषित है तथा दुनिया-भर में इस दिन को याद किया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने ही 1995-2004 को 'मानवाधिकार दशक' घोषित किया और सोचा गया कि इसके अनुच्छेदों के व्यावहारिक क्रियान्वयन की दृष्टि से जन-मानस को अभिप्रेरित किया जाए। लेकिन याद नहीं पड़ता कि सामान्य प्रचार-प्रसार को छोड़, किन्हीं ठोस उपायों के रूप में किसी सरकार या संगठन ने इसके लिए कोई कदम उठाया हो।

मानवाधिकारों के लिए भारत सहित अनेक राष्ट्रों ने घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर कर उनके अमल के लिए अपनी प्रतिबद्धता जाहिर की है। भारत में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग बना और प्रांतीय सरकारों ने भी प्रादेशिक स्तर पर आयोग गठित किए। इन आयोगों को कई तरह के शासकीय अधिकार भी दिए गए हैं। कई स्तरों पर हमने पाया है कि मानवाधिकार आयोग की दखल से शासक वर्ग चौकन्ना होता रहा है, जबकि बहुत-से मामलों में गलियां निकाल लेने में कानूनी दांव-पेंचों की सहायता मिलती रही है और सरकारों को राहत भी

मिली है। जाहिर है कि मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अधिकार और कानून पूरी तरह से कारगर नहीं हो सकते। भारत में पिछले एक दशक की कई घटनाएं हम याद कर सकते हैं। विश्व के अन्य देशों में भी कमो-बेश ऐसी ही स्थिति देखने को मिलेगी। बल्कि जो देश जितने अधिक समर्थ हैं, वे उतनी ही मात्रा में मानवाधिकारों के प्रति लापरवाह भी हैं। खासतौर से दो देशों के मध्य यह स्थिति बहुत स्पष्ट देखी जा सकती है। अमेरिका जैसे समर्थ देश ने क्या 'मानवाधिकारों' की पूरी तरह परवाह की—इराक के मामले में? नहीं।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवाधिकारों के लिए नियम-कानून और शासकीय अधिकार असरदार नहीं सिद्ध हो रहे। मानवाधिकारों की व्याख्या में तीस बिंदु अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सर्वसम्मत स्वीकृत होते हुए भी पिछले पूरे दशक में इनका भंजन खतरनाक तरीके से होता रहा है। तब ऐसे क्या उपाय हों कि विश्व में शांति और अमन के लिए, मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कुछ कारगर किया जा सके?

इसके लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर से लेकर प्रांतीय स्तर तक व्यावहारिक-प्रायोगिक रूप से कुछ बुनियादी बातों पर विचार करने की जरूरत है। जैसा कि शुरू में ही कहा गया है कि 'अहिंसा' में सब-कुछ सन्निहित है; अतः यह आवश्यक हो जाता है कि अहिंसा-तत्त्व हमारे दैनंदिन जीवन का सारभूत अंग बने। भारत में महावीर और बुद्ध के बाद पिछली सदी में महात्मा गांधी ने दैनंदिन जीवन में भी यह कर दिखाया था। न केवल अपने तई, सामाजिक और राजनीतिक स्तर पर भी अहिंसा के प्रयोग सफलतापूर्वक उन्होंने किए। उनके विस्तार में जाने की फिलवक्त आवश्यकता नहीं है, पर यह देखना जरूरी है कि अहिंसा के स्तर पर इतनी व्यापक सफलता के बावजूद गांधी के बाद दुनिया के विकसित और विकासशील राष्ट्रों में इसे बेजरूरी क्यों मान लिया गया? यह प्रश्न करते हुए फिर सर्वस्वीकृत 'मानवाधिकारों' पर ध्यान जाता है तो लगता है कि प्रत्यक्षतः 'अहिंसा' का अस्वीकार भले हुआ हो, प्रकारांतर में इसे छोड़कर निस्तारण संभव नहीं। तभी तो मानवाधिकारों के घोषणा-पत्र में प्रकारांतर से सभी बातों को समावेशित करते हुए भी 'अहिंसक समाज' के निर्माण के लिए कोई उल्लेख नहीं है और न किसी ऐसी तजवीज का प्रावधान कि उससे ऐसा समाज निर्मित हो जाए जो नियम-कायदों के भय के बिना ही वे सब बातें माने-करे, जो मानवाधिकारों की परिधि में आती हैं।

अतः यह जरूरी है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर 'एमनेस्टी इंटरनेशनल' और राष्ट्रीय स्तर पर अलग-अलग राष्ट्रों के मानवाधिकार आयोग 'मानवाधिकार घोषणा-पत्र' में 'अहिंसक समाज-निर्माण' के लिए प्रायोगिक स्तर पर ठोस तजवीज करे। जिस तरह राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तरों पर आयोगों का गठन जरूरी माना गया, ठीक उसी तरह दैनंदिन जीवन में अहिंसा के लिए प्रारंभिक स्तर से ही प्रयोग शुरू हों, जो नागरिक-अवस्था तक आते-आते सुदृढ़ और परिपक्व बन जाएं। इसके लिए शिक्षा से लेकर हमारे सामाजिक-आर्थिक ढांचे को भी बेलाग होकर खंगालना होगा। जिस तरह का विकास पिछले दशकों में हुआ है—उसकी असलियत को भी समझना होगा। देखना होगा कि इस विकास से उत्पन्न विषमता ने हिंसा और आतंक को जन्म तो दे दिया, पर अब उसकी 'नसबंदी' तत्काल और प्रभावी रूप से हो जाए, अन्यथा हिंसा और आतंक की फसल बढ़ने से रुक नहीं सकेगी।

गांधी के प्रयोगों की विरासत हमारे लिए मार्ग-दर्शक होगी। महावीर और बुद्ध के अहिंसा-दर्शन हमारे लिए धरोहर और अपनी जमीन को सुदृढ़ बनाने में सहायक होंगे। ठीक इसी तरह वर्तमान में अहिंसा-जीवन-दर्शन के एक प्रयोगकर्ता के रूप में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने सैद्धांतिक स्तर पर अहिंसा-दर्शन की विवेचनाएं कर इसे हृदयंगामी बनाने का प्रयास किया है तो प्रयोगों के स्तर पर जीवन-विज्ञान व प्रेक्षाध्यान के जरिए मानसिक बदलाव का ज्वलंत वातावरण और ठोस आधार भी दिया है। राष्ट्रों के मानवाधिकार आयोग प्रायोगिक स्तर पर इन प्रयोगों को शामिल कर व्यापक रूप देंगे तो परिणाम भी व्यापक स्तर पर और सकारात्मक रूप में प्राप्त हो सकते हैं।

संयोगवश हमें गांधी और आचार्यश्री तुलसी की जयंती का एक साथ अवसर मिला है। श्रमण महावीर के निर्वाण का भी यही महीना है। संयुक्त राष्ट्र दिवस भी इसी महीने में है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम का वनवास संपूर्ण होना तथा लंका-विजय कर घर लौटना भी इसी मास में है। ज्योतिपर्व दीपावली केवल बाहरी प्रकाश के लिए ही नहीं, अन्तः आलोक के लिए भी हमें प्रेरणा दे रहा है। इतने सारे अवसर हमें मौका देते हैं कि इन बातों पर हम विचार करें।

—शुभू पटवा

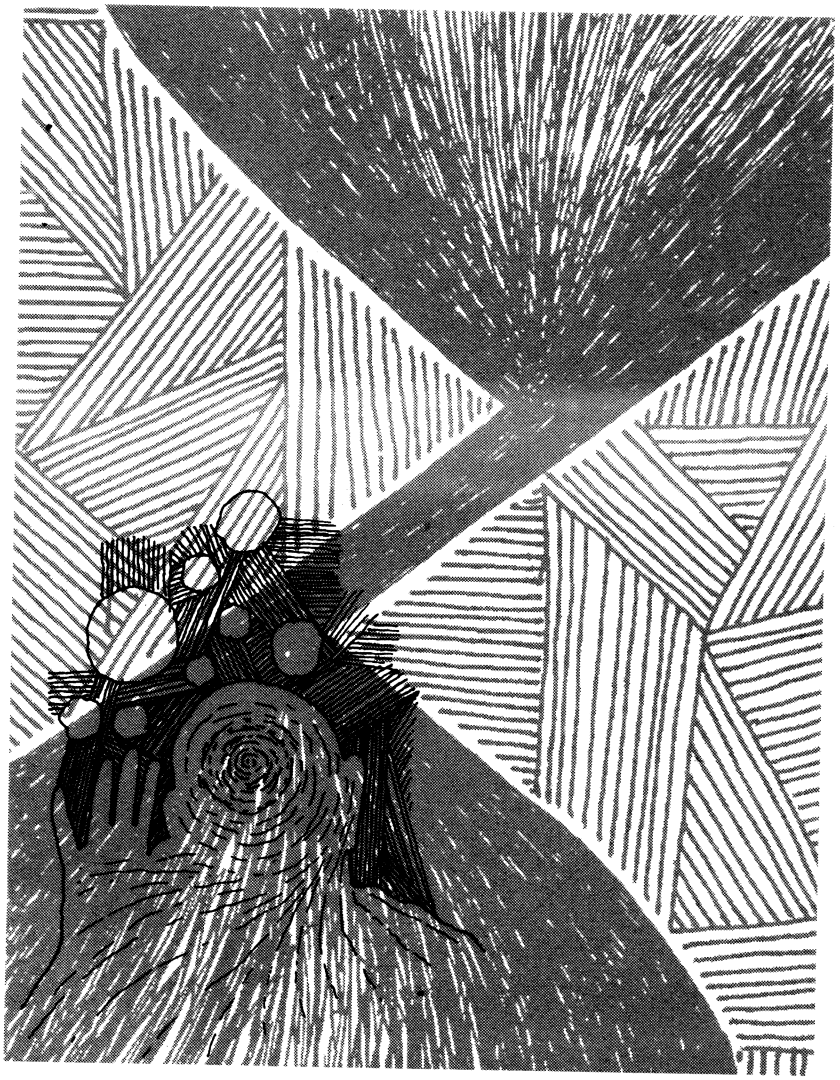

विमर्श

प्रत्येक आत्मा का अपना-अपना मनस् होता है। यह ज्ञान का एक साधन-मात्र है और इसलिए अन्य इंद्रियों की तरह ही जड़ है। ज्ञान चाहे बाह्य वस्तुओं का हो, चाहे आंतरिक अवस्थाओं का, उसकी उत्पत्ति के लिए मनस् एक अनिर्वाय सहायक कारण है। कभी-कभी आंखों और कानों के खुले होने पर भी हमें कुछ दिखाई-सुनाई नहीं देता। इस तथ्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इनसे भिन्न और सामान्य कोई चीज होनी चाहिए, जो सारे ज्ञान की सहायक हो। यही चीज मनस् बताई गई है। उदाहरणार्थ, कभी-कभी हम समय जानने के उद्देश्य से घड़ी देखते हैं, पर हमें समय नहीं दिखाई देता, क्योंकि हमारा मनस् उस समय किसी अन्य काम में लगा होता है। इस प्रकार मनस् के दो व्यापार माने जा सकते हैं : वह आत्मा की ज्ञान-प्राप्ति में सहायता करता है; परंतु साथ ही वह ज्ञान के क्षेत्र को एक ही वस्तु या वस्तुओं के एक ही समूह तक सीमित करके प्रतिबंधक का काम भी करता है। मनस् के द्वारा ही आत्मा का इंद्रिय और शरीर से संबंध स्थापित होता है; और इनके द्वारा उसका बाह्य जगत से संबंध होता है। आत्मा के सांसारिक बंधन में पड़ने का मूल कारण निश्चय ही उसका मनस् से संबद्ध होना है; क्योंकि यद्यपि शरीर और इंद्रियां भी अनेक जन्मों में आत्मा के साथ रहते हैं, तथापि ये प्रत्येक जन्म में बिलकुल नए हो जाते हैं जबकि मनस् वही बना रहता है।

—एम. हिरियन्ना

भय से कायरता आती है। कायरता से मानसिक कमजोरी आती है और उससे हिंसा की वृत्ति बढ़ती है। मौत का डर, कष्ट का डर, अनिष्ट का डर, अलाभ का डर, जाने-अनजाने अनेक डर सताने लगते हैं, तब अहिंसा से डिगने का रास्ता बनता है। पर निश्चित लक्ष्य वाला व्यक्ति नहीं डिगता। वह जानता है—ऐश्वर्य जाए तो चला जाए; मैं उसके पीछे नहीं हूं। वह सहज भाव से मेरे पीछे चला आ रहा है। यही बात मौत के लिए तथा औरों के लिए है। मैं सच बोलूंगा। अपने प्रति व औरों के प्रति सच रहूंगा। फिर चाहे कुछ भी क्यों न सहना पड़े। अहिंसक को धमकियां और बंदर-घुड़कियां भी सहनी पड़ती हैं। वह अपनी जाग्रत वृत्ति के द्वारा चलता है, इसलिए नहीं घबराता।

अहिंसा : कुछ अपेक्षाएं

आचार्यश्री महाप्रज्ञ

अहिंसा पोथी की चीज है—यह धारणा सौ में नब्बे की है। कुछ अंशों में सही भी है। अहिंसा के बारे में जितना लिखा गया, कहा गया, उपदेश दिया गया—उतना उसका आचरण नहीं हुआ। फिर भी अहिंसा जीवन में उतरी है। मनुष्य का सामाजिक रूप अहिंसा की भावना का एक छोटा प्रतिबिंब है। अनाक्रमण और भाईचारे का बर्ताव अहिंसा नहीं तो क्या है? अगर मनुष्य हिंसा-परायण ही होता तो वह अपने को सामूहिक जीवन के ढांचे में ढाल नहीं पाता।

श्रमण महावीर (निर्वाण : 22 अक्टूबर) अहिंसा के प्रमुख सूत्रकार के रूप में सर्वत्र स्मरण किए जाते हैं और महात्मा गांधी (जयंती : 2 अक्टूबर) तथा आचार्य तुलसी (जयंती : 24 अक्टूबर) अहिंसा के प्रमुख अवगाहक रहे हैं। यह दुर्लभ संयोग है कि श्रमण महावीर का निर्वाण और दो मनीषियों की जयंती एक ही मास में होने से इस माह की विशिष्टता स्वतः स्पष्ट है। ऐसे महत् अवसर पर अहिंसा के अद्वितीय भाष्यकार महामना आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का दो किस्तों में समाप्य आलेख की पहली कड़ी जैन भारती के पाठकों के लिए—

मनुष्य का विवेक, विचारशीलता और बुद्धि का विकास देखते यह प्रश्न फिर सामने आता है कि मनुष्य में अहिंसा की मात्रा कम है। उसे जितना अहिंसक होना चाहिए, उतना वह नहीं है। उसकी थोड़ी अहिंसा, अहिंसा जैसी लगती ही नहीं। हिंसक पशु भी भूख और भय से यदि आक्रांत न हों तो वे भी सहसा प्रहार नहीं करते, किंतु इसका अर्थ यह नहीं होता कि वे अहिंसक हैं। बहुत-सारे पशु-पक्षी सामुदायिक जीवन भी बिताते हैं। हिंसक पशु सामूहिक जीवन बिताने में रस नहीं लेते, फिर भी उनमें आपसी आक्रमण प्रायः नहीं होता।

सामान्य स्थिति में अनाक्रमण, भाईचारा और सामूहिक

जीवन-यापन से अहिंसा के प्रतिफल नहीं मिलते, दूसरे शब्दों में इनसे उनकी उद्‌बुद्ध अहिंसा का परिचय नहीं मिलता।

आक्रमण को अनाक्रमण से जीतें, यह अहिंसा का जाग्रत स्वरूप है; जिसकी मनुष्य जैसे बुद्धिमान प्राणी से ही अपेक्षा की जा सकती है। पशु कार्य कर सकता है, उसका परिणाम नहीं सोच सकता। मनुष्य अतीत से शिक्षा ले सकता है और भविष्य की कल्पना भी कर सकता है। उसका कार्य इन दो शृंखलाओं से जुड़ा हुआ होता है। मनुष्य कार्य करते-करते लाभ-अलाभ, हित-अहित और इष्ट-अनिष्ट की चिंताओं से घिरा रहता है। इस स्थिति में यह प्रश्न होता है कि क्या अभी मनुष्य अहिंसा का मूल्य आंक नहीं सका है, अथवा उसे समझकर भी उसका आचरण करने में असमर्थ है? दूसरी बात में हमारा मानसिक समाधान मिलता है। अहिंसा को समझ लेना ही काफी नहीं है। अहिंसक बनने के लिए उसके योग्य सामर्थ्य का विकास करना आवश्यक है। पंडित और साधक—ये दो चीजें हैं। जानना पंडिताई का काम हो सकता है, किंतु करने में साधना चाहिए।

पशु और पंडित में जितना भेद है, उतना ही भेद पंडित और साधक में है। पशु, अहिंसा की भाषा नहीं जानता जबकि पंडित जानता है। साधक वह है जो उसकी भाषा जानने तक ही न रहे, उसकी साधना भी करे।

हममें अहिंसा के पंडित अधिक हैं, साधक कम। इसीलिए अहिंसा का विकास कम हुआ है। मनुष्य ज्ञान के क्षेत्र में अन्य प्राणियों से आगे है। उसकी बढ़ी-चढ़ी तर्कणा-शक्ति ने उसे अधिक स्वार्थी बनने में सहयोग दिया है। उसके पास ऐसे तर्क हैं, जिनके द्वारा वह अपने लिए होने वाली दूसरों की हिंसा को क्षम्य ही नहीं, निर्दोष बता सकता है। होता यह है कि अहिंसा आत्मा तक बिना पहुंचे शब्दों के जाल में ही उलझ जाती है।

हिंसा जीवन की कमजोरी है, अशक्यता है—स्वभाव नहीं। इसीलिए हिंसा मिटाई जा सकती है और मिटाई जानी चाहिए। प्रयत्न की जरूरत है। कमजोरियों से छुट्टी पाए बिना हिंसा छूट नहीं सकती। इसीलिए हमें इस विषय पर सोचना चाहिए कि जीवन में अहिंसा का प्रयोग कैसे किया जाए?

हिंसा और अहिंसा के परिणामों को जानने से हिंसा के प्रति ग्लानि और अहिंसा के प्रति रुचि पैदा हो सकती है। आचार्यों ने हमें उनकी परिभाषाएं दीं। वे समझने की चीजें हैं। हमारी हिंसा और अहिंसा का संबंध हमारे कार्यों से है। उनके पीछे भय, स्वार्थ, अहं, क्रोध, आग्रह, छल-कपट आदि अनेक भावनाएं होती हैं। उन्हीं के कारण वृत्तियां कलुषित बनती हैं, हिंसा का वेग बढ़ जाता है। जीवन में अहिंसा लानी है तो हमें दो काम करने होंगे—एक तो भावनाओं को पवित्र करना होगा और दूसरे, कार्यों को बदलना होगा। उनको कैसे बदलें? भावनाओं को पवित्र कैसे बनाएं? इस पर कुछ विचार करना चाहिए।

अहिंसा का मानदंड निजी जीवन नहीं होता। मनुष्य दूसरों की हिंसा को जितनी स्पष्टता से समझ सकता है, उतनी स्पष्टता से अपनी हिंसा को नहीं समझता। अपनी भूलों के पीछे कोई-न-कोई तर्क, युक्ति लगी रहती है। वह अपनी भूलों को ज्यों-त्यों सही करने की चेष्टा में लगा रहता है और दूसरे की भूल साफ-साफ समझने में आती है। कोई सफाई लगाए तो वह बुरी मालूम होती है। दूसरे की बुराई को समझने में कठिनाई इसलिए नहीं होती कि उसके प्रति हमारी आंखें मोह से ढंकी हुई नहीं हैं, बीच में कोई आवरण नहीं है। हम स्वयं को या अपनों को इसलिए ठीक नहीं कूत सकते क्योंकि हममें अपने प्रति अब भी मोह और अन्याय करने की भावना विद्यमान है।

अहिंसा का पहला प्रयोग यही होना चाहिए कि हम स्व और पर की भूमिका से ऊपर उठें। अहिंसा के विकास में सबसे बड़ी बाधा स्व और पर का भेद है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से लड़ता है। लड़ने का कारण है—उसके लड़के की दूसरे आदमी के लड़के के साथ कहा-सुनी हो गई। दोषी दोनों हैं। फिर भी वह पक्ष अपने पुत्र का ही लेगा, कारण कि वह उसका है। दूसरा, दूसरा है। व्यवहार में ये बातें चलती हैं। ऐसी छोटी-छोटी बातों पर बड़ी-बड़ी लड़ाइयां छिड़ जाती हैं। किंतु, अहिंसा इन्हें नहीं सह सकती। अहिंसा के सामने स्व और पर जैसी कोई चीज ही नहीं होती। वहां यह भावना ही नहीं होती कि यह मेरा है, इसलिए इसके दोष को छिपाऊं और दोषों का प्रतिकार न करूं। अहिंसक अपने दोषों को छिपाने की बात भी नहीं जानता। वह साफ होता है, उतना साफ जितना कि स्फटिक। हिंसक व्यक्ति भूलों को छिपाकर रखने में जहां गौरव मानते है, वहां अहिंसक भूलों को दूसरे के सामने रखकर अपने को हलका अनुभव करते हैं। यह आत्म-बल होना चाहिए। अहिंसा के लिए शरीर-बल से कहीं अधिक आत्म-बल की अपेक्षा है। मानसिक कमजोरी आई, छिपाने-दबाने की बात आई कि अहिंसा नौ-दो-ग्यारह हो जाती है। छिपाने का अर्थ है—वक्रता, उसका मतलब है—हिंसा। आत्म-बल स्वयं साधना का फल है। यह

अहिंसा की रुचि से बढ़ता है। उससे अहिंसा का विकास होता है।

अहिंसक के सामने आगे बढ़ने का एक पवित्र लक्ष्य होना चाहिए। उसके बिना वह आत्म-बल बटोर नहीं सकता। अहिंसक सरलता से बोलता है, सरलता से चलता है और सरलता से कार्य करता है। सरलता के सामने कुटिलता जब होती है तो हिंसा का अहिंसा पर प्रहार होने लगता है। वह प्रहार अनेकमुखी होता है। कभी व्यक्तियों द्वारा, कभी परिस्थितियों द्वारा, तो कभी-कभी उसकी अपनी निजी प्रवृत्तियों द्वारा भी, कभी प्रतिकूल तो कभी मनोनुकूल। ऐसी हालत में अगर एक निश्चित लक्ष्य न हो तो साधक फिसले बिना नहीं रह सकता।

आत्म-विकास का लक्ष्य लेकर चलने वाला कहीं कष्ट पाए, गालियां सुने, मारा-पीटा जाए—फिर भी कतराता नहीं। वह सोचता है कि स्व-प्रशंसा और पूजा से मैं ऊंचा नहीं उठा, तो इससे नीचा भी नहीं होऊंगा। ये दोनों पौद्‌गलिक जगत के परिणाम हैं। मुझे आत्म-जगत में जाना है। सुखी रहूं चाहे दुखी, प्रशंसा सुनूं चाहे निंदा, पूजा जाऊं चाहे पीटा जाऊं—इनसे होना-जाना क्या है? मेरा लक्ष्य मिलेगा—मेरी समता से। वह बनी रहनी चाहिए। अनुकूलता में राग या उत्कर्ष, प्रतिकूलता से द्वेष या अपकर्ष नहीं होना चाहिए। यही आत्म-बल है। लक्ष्य की निश्चितता से जैसे आत्म-बल बढ़ता है, वैसे निर्भयता भी बढ़ती है। निर्भयता अहिंसा का प्राण है।

भय से कायरता आती है। कायरता से मानसिक कमजोरी आती है और उससे हिंसा की वृत्ति बढ़ती है। मौत का डर, कष्ट का डर, अनिष्ट का डर, अलाभ का डर, जाने-अनजाने अनेक डर सताने लगते हैं, तब अहिंसा से डिगने का रास्ता बनता है। पर निश्चित लक्ष्य वाला व्यक्ति नहीं डिगता। वह जानता है—ऐश्वर्य जाए तो चला जाए; मैं उसके पीछे नहीं हूं। वह सहज भाव से मेरे पीछे चला आ रहा है। यही बात मौत के लिए तथा औरों के लिए है। मैं सच बोलूंगा। अपने प्रति व औरों के प्रति सच रहूंगा। फिर चाहे कुछ भी क्यों न सहना पड़े। अहिंसक को धमकियां और बंदर-घुड़कियां भी सहनी पड़ती हैं। वह अपनी जाग्रत वृत्ति के द्वारा चलता है, इसलिए नहीं घबराता। इन सब बातों से भी एक बात और बड़ी है। वह है—कल्पना का भय। जब-तब यह भावना बन जाती है—अगर मैं ऐसे चलूंगा तो अकेला रह जाऊंगा, कोई भी मेरा साथ नहीं देगा। यह भी अहिंसा के मार्ग में कांटा है। अहिंसक को अकेलेपन का डर नहीं होना चाहिए। उसका लक्ष्य सही है, इसलिए वह चलता चले। आखिर एक दिन दुनिया उसे अवश्य समझेगी। महात्मा ईसा का जीवन इसका ज्वलंत प्रमाण है। आचार्य भिक्षु भी इसी कोटि के महापुरुष थे। दूसरों के आक्षेप, असहयोग आदि की उपेक्षा कर निर्भीकता से चलने वाला ही अहिंसा के पथ पर आगे बढ़ सकता है।

पिछली पंक्तियों में जो थोड़ा-सा विचार किया गया, उसका फलित यह होगा—जो व्यक्ति स्व-पर के भेदभाव से ऊंचा उठा हुआ है, जिसके सामने पवित्र लक्ष्य है, जिसका आत्म-बल विकसित है और जो निर्भय है—वही अहिंसक बन सकता है। यह अहिंसा की भूमि है।

अहिंसा की कसौटी क्या है? अहिंसा का तेज कहां निखरता है? इस पर भी कुछ ध्यान दें—

एकांतवास में आदमी अहिंसक बन सकता है, किंतु अहिंसा की परख वहां नहीं हो सकती। इसका क्षेत्र है—सहवास। सबके साथ रहकर या सबके बीच रहकर जो अहिंसक रहता है, वहां उसकी परख होती है।

एक साथी क्रोधी है, दूसरा अभिमानी है, तीसरा मायावी है और चौथा लोभी है—उनके साथ कैसे बरता जाए?

(क) साथी बात-बात में गुस्सा करता है, अंट-संट बोलता है। बकवास करने से भी नहीं चूकता, गालियां भी सुना देता है। 'शठे शाठ्यं समाचरेत्'—इसका मतलब है—हिंसा। सामने के व्यक्ति को अहिंसक रहना और साथी को भी साथ लिए चलना है। वह शांतभाव से सब-कुछ सहता चला जाता है तो उसे कायर बताते हैं। अब वह क्या करे?

अहिंसक में चैतन्य होना चाहिए। निर्जीव अहिंसा दीनता का ही दूसरा रूप है। अहिंसक क्रोधी के आवेग को सहे अवश्य, किंतु दीन बनकर नहीं। क्रोधी को यह भान होता रहना चाहिए कि अहिंसक में प्रतिकार करने की शक्ति है, फिर भी वह अपने धर्म की रक्षा के लिए सब-कुछ सहता है। क्रोधी एकपक्षीय क्रोध आखिर कब तक करेगा? उसे क्रोध करने का पूरा अवसर मिलता है, तो निश्चित समझिए उसका क्रोध खतरे में है। क्रोध, क्रोध से बढ़ता है। क्रोध के बदले क्षमा मिलती है, तब वह स्वयं पछतावे में बदल जाता है। ऐसे चलते-चलते क्रोध स्वयं निस्तेज हो जाता है और क्षमा उस पर विजय पा लेती है।

(ख) साथी अभिमानी है, वह चाहता है—पूजा, प्रशंसा और गुणानुवाद। अहिंसक को यह न रुचे, वह उसका उत्कर्ष न साध सके—तब संघर्ष होता है। उसकी आत्म-संतुष्टि अथवा संघर्ष को टालने के लिए क्या अहिंसक चलताऊ बातें करे? अगर न करे तो उसका परिणाम होता है—आपसी अनबन। इस स्थिति में वह कौन-सा मार्ग चुने? पहला या दूसरा?

प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक मात्रा में विशेषताएं होती हैं। अहिंसक उन्हें सामने रखकर चले। निःसंकोच उन्हें प्रकाश में लाए। ईर्ष्या न करे। एक विशेषता बताकर आदमी दस कमियां बताए तो वे अखरती नहीं, केवल भूलें ही भूलें सामने रखी जाएं तो सुनने वाला उकता जाता है, या चिढ़ जाता है। सामान्यतया अपनी प्रशंसा सुनने में हरेक व्यक्ति को दिलचस्पी होती है। हम उसकी विशेषता बताएंगे तो वह जरूर हमारे प्रति आकृष्ट होगा। आकर्षण में अपनत्व होता है। अपनत्व के नाते आदमी कड़वे घूंट भी पी सकता है। रोगी को पहले विश्वास होना चाहिए कि इस दवा से मुझे लाभ होगा, तभी उसे कटुक या कुटज पिलाया जा सकता है। अहिंसक को सबके दिलों में विश्वास पैदा करना चाहिए। विश्वास के द्वारा जब दूसरों के दिलों को वह जीत लेता है, तब उसकी कठिनाई मिटती तो नहीं, किंतु हां, कम जरूर होती है।

मूल बात यह है कि अहिंसक ललचाए नहीं। वह दूसरे को प्रसन्न रखने की चेष्टा करे, किंतु इसलिए नहीं कि उसके द्वारा उसे लाभ मिले, या स्वार्थ सधता रहे; यह हिंसा की भावना है, आत्मा की कमजोरी है।

अहिंसक अपनी मर्यादा तोड़कर किसी को प्रसन्न रखने की बात नहीं सोच सकता। अधिक-से-अधिक यह हो सकता है कि आपसी सद्भावना, गुणानुराग या गुणोत्कीर्तन से दूसरे को अपनी ओर खींचना। खींचने का मतलब बांधना नहीं, केवल भाईचारा बढ़ाने की भावना है।

यह तो कभी नहीं हो सकता कि अहिंसक थोथी बड़ाई के पुल बांधकर किसी को टिकाए। यह दोष आत्म-श्लाघा से कम नहीं है। इस प्रवृत्ति से केवल अहिंसक ही टोटे में नहीं रहता, सामने वाले व्यक्ति को भी बड़ी हानि होती है, भले उस समय वह समझे या न समझे। झूठी प्रशंसा का अर्थ होता है, उसका पतन। झूठी प्रशंसा आदमी को आगे नहीं ले जाती। यह ऐसी वेश्या है, जो एक बार ललचाकर सदा के लिए गिरा देती है।

अहिंसक को नम्र होना चाहिए, किंतु दूसरों की बुराइयों को प्रोत्साहन देने के लिए नहीं। दूसरे के गुणों के प्रति और अपनी वृत्ति के प्रति जो नम्रता होती है—उसी का नाम नम्रता है। बुराई के सामने झुकना नम्रता नहीं है। लालची-वृत्ति से झुकना भी नम्रता नहीं है।

अहिंसक बुराई के साथ कभी भी समझौता नहीं कर सकता, इसलिए उसे जितना नम्र होना चाहिए, उतना कठोर भी। 'वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि'—यह बात अहिंसक के लिए सोलह आने सही है। कठोर किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, अपनी वृत्तियों के प्रति होना चाहिए, ताकि बुराई से समझौता न करने के कारण पैदा होने वाली कठिनाइयों का दृढ़ता से सामना कर सके।

(ग) साथी मायावी है। वह छल से चलता है। कहता कुछ है और करता कुछ है। मन में कुछ है और बाहर से कुछ और ही दिखाता है। इस हालत में अहिंसक उसके साथ कैसे चले?

अहिंसक का दिल साफ होना चाहिए। चलते-चलते पैंतरा बदलना उसके लिए उचित नहीं। माया वह करता है, जो अंदर की कमजोरियों के बावजूद अपने को बहुत बड़ा व्यक्ति सिद्ध करना चाहता है। अहिंसक में बड़ा बनने की भूख नहीं होनी चाहिए। फिर वह माया क्यों करे? वह हर काम सच्चाई के साथ करे। जो बात दिल में आए, वह साफ-साफ कह दे। कहने का अवसर न हो तो मौन रख ले, किंतु दिल में कुछ, और कहे कुछ—ऐसा कभी न करे। किसी को झूठा विश्वास दिलाना बहुत बड़ी हिंसा है। अहिंसक को चाहिए कि वह अपनी कमजोरियों को छिपाए नहीं। दूसरों को धोखे में रखना बड़ी भूल है, हिंसा है।

मायावी की चालों को समझना जरूर चाहिए। चालाकी को समझना हिंसा नहीं है, हिंसा है चालाकी करना।

अहिंसक में फल की आशा नहीं होनी चाहिए। एक के बदले दस पाने की लालसा नहीं होनी चाहिए। इससे माया की वृत्ति बढ़ती है। सरलता से बरतने वाला दूसरों को भी सरल बना देता है। संभव है, कोई न भी बने, फिर भी अहिंसक के लिए तो सरलता के सिवा दूसरा विकल्प ही नहीं है।

(घ) साथी लोभी है। वह हर काम लालच से करता है, स्वार्थ को आगे किए चलता है। अपनी चीजों पर ममत्व है। खान-पान की भी आसक्ति है। अहिंसक को तब क्या करना चाहिए?

अहिंसक की भूमिका परमार्थ की होती है। वह

परमार्थ को आगे कर, स्वार्थ से लड़े। वह सोचे—ये पौद्गलिक वस्तुएं नष्ट होने वाली हैं। तब फिर आसक्ति क्यों? यह सोचकर उनकी चिंता से मुक्त बने, ऐसा अभ्यास करे। असंभव दीखने वाली बात भी अभ्यास से संभव बन जाती है। किसी ने अपनी वस्तु का उपयोग कर लिया तो कर लिया, इसमें बिगड़ा क्या? तुच्छ बात को लेकर स्वयं बिगड़ जाए, यह कितना बुरा है! अहिंसक का पहला लक्षण है—अनासक्ति। वह संयम के लिए और संयमपूर्वक खाए, पीए, पहने और जीए। अहिंसक को अपनी अनासक्ति का भाव अधिक जगाना चाहिए, त्याग का विशेष परिचय देना चाहिए। ऐसा करके वह साथी को ममत्व के जाल से बाहर निकाल सकता है।

लालची के साथ लालची जैसा बर्ताव करने पर स्थिति बिगड़ती है। लालची के साथ संतोष—परितृप्ति बरतने से उसकी अतृप्ति अपने-आप सिकुड़ जाती है। हवा को रोकिए, उसका वेग बढ़ेगा, शक्ति बढ़ेगी। उसे खुले स्थान में छोड़ दीजिए, वह अपने-आप बिखर जाएगी। यही बात बिगड़े लालच की है। लालची स्वयं समझकर उसका वेग रोके तो रुक सकता है। अगर कोई दूसरा व्यक्ति उसके वेग को बलात् रोकना चाहे तो वह रुकने के बजाय उभर जाता है, अथवा दूसरी बुराई के रूप में बदल जाता है। अहिंसक एकाएक किसी को दबाता नहीं। उसकी संतोषपूर्ण प्रवृत्तियां धीरे-धीरे लालच को उखाड़ फेंकती हैं।

अन्याय का प्रतिकार

सहवास में एक ओर जहां आपसी वैयक्तिक झमेले उठते हैं, वहीं दूसरी ओर अनधिकार चेष्टा तथा अन्याय के थोपे जाने का खतरा रहता है। ऐसी स्थिति में अहिंसक को चुप्पी साधनी चाहिए या प्रतिकार करना चाहिए।

अहिंसक के लिए मौन अच्छा साधन है। मौन साधने पर भी अन्याय नहीं टल सके तो उसके लिए एकमात्र प्रतिकार का रास्ता बाकी रहता है। हिंसात्मक प्रतिकार उसके लिए है नहीं। अहिंसात्मक तरीकों से वह चले। कष्ट आए उन्हें झेले, उनके सामने घुटने न टेके, झुके नहीं। अन्याय को प्रोत्साहन देने वाले तत्त्वों से सहयोग न करे। नम्रता को भी न छोड़े। तिरस्कार, उद्दंडता, अवज्ञा—ये सब हिंसा हैं। अहिंसक किसी भी हालत में इन्हें नहीं चुन सकता। अहिंसा में दब्बूपन नहीं है, यह ध्यान रहे। हिंसक झंझटों में क्यों फंसे, क्यों बोले? सब-कुछ सहना ही उसका धर्म है—यह समझना भारी भूल है। क्षमा का अर्थ है—अपनी वृत्तियां उत्तेजित न हों। अन्याय में सहयोगी बने—यह क्षमा नहीं, कमजोरी है। क्षमा को वीरों का भूषण कहा गया है। वह कायरता का आवरण नहीं होना चाहिए।

अन्याय का प्रतिकार करने की बात दूसरी है। पहली बात है—वह स्वयं किसी के प्रति अन्याय न करे। जो दूसरों के प्रति अन्याय न करे, उसे ही अन्याय का प्रतिकार करने का हक है। इसलिए अहिंसक को चाहिए कि वह अपनी वृत्तियों को पूर्ण संयत करे। अन्याय का मतलब है—असंयम। असंयम व्यक्ति में रहे, वह भी बुरा है। अपना असंयम दूसरों पर प्रभाव डाले, यह तो और अधिक बुरा है। अहिंसा का मूल मंत्र है—संयम। भगवान महावीर ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है—'अहिंसक वह है जो हाथों का संयम करे, पैरों का संयम करे, वाणी का संयम करे और इंद्रियों का संयम करे।'

संयम ही अहिंसा है। यह आत्म-निष्ठा से फलित होती है, इसीलिए उसका सिद्धांत अध्यात्मवाद कहलाता है।

अध्यात्म के विचार-बिंदु

1. आकांक्षा का अभाव अध्यात्म है।
2. विचार का अभाव अध्यात्म है।
3. चारित्रिक कर्मण्यता अध्यात्म है।
4. अकर्मण्यता अलसता नहीं, किंतु निवृत्ति है। यह अध्यात्म है। एक शब्द में आत्मा का सहज रूप अध्यात्म है।
5. अध्यात्म का चरम या परम रूप है—अकर्मण्यता, यानी दूसरे पदार्थ के सहयोग का अस्वीकार—सर्वथा आत्म-निर्भरता—यह मुक्ति-स्थिति है। जीवन-काल में कर्मण्यता में अकर्मण्यता का जो अंश है, वह अध्यात्म है, अथवा कर्मण्यता में असत् कर्मण्यता का जो अभाव है, वह अध्यात्म है।
6. अध्यात्मवाद से आकांक्षा की तृप्ति नहीं, उसका अभाव हो सकता है।
7. अध्यात्मवाद से आवश्यकता की पूर्ति नहीं, उसकी पूर्ति के साधनों का विकार मिट सकता है।
8. अध्यात्म से पदार्थ की प्राप्ति नहीं, प्राप्त पदार्थ पर होने वाला ममकार या बंधन छूट सकता है।
9. भौतिक प्राप्ति के लिए भौतिक साधन अपेक्षित होते हैं और आत्म-प्राप्ति के लिए आत्मिक साधन।
10. भौतिकता से दूर रहने के लिए आत्मिक साधन उपयोगी हैं।

11. भौतिकता को सीमित करने के लिए आत्मिक साधन चाहिए।
12. भौतिक जीवन का स्तर ऊंचा होगा, आवश्यकताएं बढ़ेंगी, शांति कम होगी।
13. आध्यात्मिक जीवन ऊंचा उठेगा, आवश्यकताएं कम होंगी, शांति बढ़ेगी।
14. पदार्थ के अभाव में अशांति और भाव में शांति—ऐसी व्याप्ति नहीं बनती।
15. मानसिक नियंत्रण से मानसिक साम्य होता है और वही शांति है। मानसिक अनियंत्रण से मानसिक वैषम्य बढ़ता है, वही अशांति है।
16. जहां आकांक्षा है, वहां अशांति है और जहां आकांक्षा नहीं, वहां शांति है।
17. आवश्यकता है, वहां श्रम होगा—अशांति नहीं।
18. आवश्यकता की पूर्ति संभव है, आकांक्षा की पूर्ति असंभव।
19. शोषण का मूल जीवन की आवश्यकताएं नहीं, मानसिक अतृप्ति है।
20. अहिंसा का आधार कायरता नहीं—अभय, समता और संयम हैं।
21. अपरिग्रही वह नहीं, जो दरिद्र है। अपरिग्रही वह है, जो त्यागी है।
22. भोग समाज की अपेक्षा है और त्याग उसकी अति का नियंत्रण।
23. भोग आत्मा का विकार है और त्याग आत्मा का स्वरूप।
24. असंयम में बाह्य नियंत्रण रहता है, इसलिए असंयमी दूसरों के सामने अन्याय करने में झिझकता है।
25. संयम में अपना नियंत्रण होता है, इसलिए संयमी एकांत में भी अन्याय नहीं करता।
26. मर्यादाहीन जीवन कहीं भी मान्य नहीं होता। स्व-मर्यादा नहीं होती, वहां दूसरे मर्यादा करते हैं। अध्यात्मवाद स्वयं मर्यादा है। हीन भावना न आए, इसलिए अध्यात्मवादी मानता है—मैं स्वयं परमात्मा हूं।
27. गर्व न आए, इसलिए अध्यात्मवादी मानता है—सब जीव समान हैं, सब जीव एक हैं।
28. परमात्मा बनने के लिए और मिथ्याभिमान से बचने के लिए अध्यात्मवाद का सूत्र है—संयम की साधना।
29. अध्यात्मवादी वह होता है, जो दूसरों से न डरे, न दूसरों को डराए, न स्वयं दूसरे को ऊंच-नीच समझे और न दूसरों से स्वयं को ऊंच-नीच समझे, सबके प्रति समभाव बरते।

निष्क्रिय अहिंसा का उपयोग

कई व्यक्ति निषेधात्मक अहिंसा को निठल्लों का हथियार बताते हैं। प्रवृत्ति-शून्य जीवन उन्हें रुचता नहीं। सब-कुछ करते हुए अहिंसा का पालन करना—यही उनके सिद्धांत का सार है। यह सिद्धांत न एकांततः सारहीन है और न एकांततः सारयुक्त। देह-दशा में पूर्ण निष्क्रियता हो नहीं सकती, यह वस्तुस्थिति है। किंतु, इससे प्रवृत्ति मात्र में अहिंसात्मकता नहीं आती। असंयमांश मिट जाता है, वही प्रवृत्ति अहिंसात्मक होती है। इसलिए प्रवृत्ति को शुद्ध करने के लिए निवृत्ति आवश्यक है। दया का भाव आता है, तब हिंसा की निवृत्ति होती है। हिंसा की निवृत्ति होती है, तब दया का विकास होता है। मुनि पूर्ण दयालु होता है, इसलिए वह सभी जीवों का त्रायी—पूर्ण अहिंसक होता है। गृहस्थ की शक्यता अधूरी होती है। वह सब प्रवृत्तियों के असंयमांशों को छोड़ने में सक्षम नहीं होता, इसलिए वह पूर्ण दयालु नहीं होता। पूर्ण दयालु नहीं होता, इसलिए वह पूर्ण अहिंसक नहीं होता।

युद्ध की प्रवृत्ति हिंसा है, किंतु उसमें भी निरपराध को न मारने, निहत्थों पर प्रहार न करने की वृत्ति जो है—वह अहिंसा है। व्यापार करना अहिंसा नहीं, किंतु व्यापार करने में झूठा तोल-माप व शोषण न करने और न ठगने की वृत्ति अहिंसा है। सिद्धांत की भाषा में कहा जा सकता है कि राग-द्वेष से जितना बचाव किया जाए, वही अहिंसा है। राग-द्वेष प्रवृत्ति है और उनसे बचाव करना निवृत्ति—**रागद्वेषौ प्रवृत्ति स्याद्, निवृत्तिस्तन्निरोधनम्।** (आत्मानुशासन-237) निवृत्ति का अर्थ केवल प्रवृत्ति का निषेध ही नहीं, किंतु प्रवृत्ति के रागांश या द्वेषांश का वर्जन भी है—इसीलिए निवृत्त्यात्मक अहिंसा को निठल्लों का हथियार नहीं कहा जा सकता। सक्रिय अहिंसा जीवन की कुछ-एक घड़ियों में होती है। निष्क्रिय अहिंसा का उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षण में किया जा सकता है, किंतु उसका उपयोग वही कर सकता है, जो सच्चा वीर हो। प्रवृत्ति की अपेक्षा सत्प्रवृत्ति दुष्कर है, वैसे ही सत्प्रवृत्ति की अपेक्षा निवृत्ति दुष्कर है। ❖

शेष अगले अंक में

मनुष्य कितना ही स्वार्थांध क्यों न बन गया हो और चाहे जैसे घातक अथवा कुटिल उपायों से काम लेने की उसकी तैयारी क्यों न हो, फिर भी अपने दिल की गहराई में उसे यह प्रतीति होती है कि सत्य ही सबसे श्रेष्ठ है और इसी कारण उसके मन में सत्य के लिए आदर और भय भी रहता ही है। मनुष्य मात्र के हृदय में सत्य के लिए यह जो गुप्त प्रतीति, आदर और भय पाए जाते हैं, वे सत्याग्रह के शस्त्र की बुनियाद हैं। इसी को मनुष्य के हृदय में विद्यमान 'अंतःकरण की आवाज' कहा जा सकता है।

सत्याग्रह : एक शास्त्र; एक शस्त्र

किशोरलाल घ. मशरूवाला

व्यक्ति और समाज के बीच का संबंध कुछ इस प्रकार का है कि जिस समाज में व्यक्ति का जन्म होता है, उस समाज की कुल-मिलाकर जितनी प्रगति धर्म में हुई होती है, उसकी तुलना में व्यक्ति की प्रगति बहुत आगे नहीं बढ़ सकती। भूतकाल के किसी महापुरुष की तुलना में आज का महापुरुष धर्म-विचार अथवा धर्म-साधना के किसी मामले में आगे बढ़ जाए, तो इसका बहुत-कुछ कारण तो यही हो सकता है कि उस महापुरुष के समय के समाज की अपेक्षा आज का समाज इस प्रकार के धर्म-विचार और साधना में अधिक आगे बढ़ा हुआ हो। यह आशा की जा सकती है कि इसी तरह मानव-समाज में धर्म की शुद्धि उत्तरोत्तर होती रहेगी।

इस कारण अपने आस-पास चल रहे स्पष्ट अधर्म की ओर से आंखें मींचकर कोई व्यक्ति अपनी अतिशय आध्यात्मिक उन्नति कर सके, यह संभव नहीं। अतएव व्यक्ति को केवल अपने ही जीवन में सत्य, अहिंसा आदि धर्मों की सिद्धि करनी हो, तो भी समाज में चल रहे अधर्म का विरोध करना उसका कर्तव्य हो जाता है। जिस हद तक स्वयं उसमें सत्य आदि गुणों का उत्कर्ष हुआ होगा और जिस हद तक उसे अधर्म के विष का स्पष्ट अनुभव हुआ होगा, उसी हद तक उसका विरोध करने के अपने कर्तव्य को वह समझेगा और उसमें अपनी शक्ति लगाएगा।

सत्याग्रही की मर्यादा

सत्याग्रह का तत्त्व अभी पूर्णतया विकसित शास्त्र नहीं बना है। उसका प्रयोग अभी बाल्यावस्था में है, और उसका प्रयोग करने वाला और उसकी शक्ति को खोजने और आजमाने वाला कोई पूर्ण शास्त्री अभी ध्यान में नहीं है। (यह प्रसंग सन् 1935 का है और स्वयं महात्मा गांधी ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में 'सत्याग्रह' का अनेक बार सहारा लिया। 'सत्याग्रह' को अब एक सौ वर्ष हो गए हैं।)

अतएव सब प्रकार के अधर्मों, अन्यायों, कलहों आदि का निवारण करने के लिए तुरंत आचरण में लाने योग्य नुस्खे पाने की कोई आशा न रखे। परंतु यह श्रद्धा रखकर कि सत्य और अहिंसा में ये शक्तियां हैं ही, सत्याग्रही इन्हें खोजने का प्रयत्न करता रहे। इस बीच, अनेक प्रकार के अधर्मों, अन्यायों, कलहों आदि का

निवारण उससे हो नहीं पाता है, यह देखकर वह न तो निराश हो और न निष्क्रिय ही बने।

जिन अधर्मों को दूर करने के लिए वह सत्याग्रह का मार्ग ढूंढ़ नहीं सकता है, उनके हिंसात्मक उपाय आयोजित होते रहेंगे। सत्याग्रही उन उपायों का केवल निषेध करे अथवा अपना शारीरिक या आर्थिक सहयोग न देकर तटस्थ रहे, इससे हिंसा के बारे में उसका नैतिक दायित्व कम नहीं होगा। वह इस दायित्व से तभी मुक्त हुआ माना जाएगा जब इसकी कोई अहिंसात्मक योजना वह सुझाएगा और सिद्ध कर दिखाएगा। इसका यह मतलब नहीं कि सत्याग्रही का केवल निषेध करना या तटस्थ रहना हमेशा ही गलत माना जाएगा। कभी-कभी उसका इतना और यही कर्तव्य हो सकता है।

किंतु ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब सत्याग्रही को हिंसा में न्यूनाधिक मात्रा में सक्रिय भाग भी लेना पड़े। उदाहरण के लिए, अपराधी को दंड दिलाना, युद्ध छिड़ने पर अपने राज्य की मदद करना आदि। जिस राज्य में वह रहता है और जिससे सुरक्षा पाता है, यदि उस राज्य को वह अहिंसा का मार्ग न दिखा सके, तो केवल हिंसा का विरोध करने से अथवा असहयोग करने से वह उस हिंसा का सहभागी बनने से बचता नहीं। किंतु, इस प्रकार मदद करते हुए भी मदद की अपनी रीति में वह अपनी सारी सत्यनिष्ठा और अहिंसा-वृत्ति का परिचय दे और अहिंसात्मक मार्ग खोजने का प्रयत्न करे।

2 अक्टूबर, सन् 1869 को पोरबंदर (गुजरात) में हाड़-मांस का एक पुतला धरती पर आया और अलबर्ट आईंस्टाइन ने कालांतर में इनके लिए कहा कि 'हाड़-मांस का बना ऐसा मनुष्य इस पृथ्वी पर हुआ होगा, इस पर आने वाली पीढ़ियां शायद ही विश्वास करें।' माता पुतलीबाई और पिता करमचंद ने इनका नाम रखा—मोहनदास करमचंद गांधी। बीती सदी को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला यह मनुष्य दुनिया-भर में 'महात्मा गांधी' कहलाया। दक्षिण अफ्रिका के जोहानिसबर्ग में 11 सितंबर, 1906 को एक दिव्य शास्त्र 'सत्याग्रह' का प्रवर्तन कर वंचितों, दबे-कुचलों को 'अहिंसक शस्त्र' देने वाले इस विरल पुरुष ने भारत की स्वतंत्रता में 'सत्याग्रह' का सफल प्रयोग किया। इसी 'सत्याग्रह शास्त्र' का यह शताब्दी वर्ष है। महात्मा गांधी की 137वीं पावन जयंती और 'सत्याग्रह शताब्दी वर्ष' पर जैन भारती के पाठकों के लिए मननीय यह विशेष आलेख—

सत्याग्रह का मूलभूत सिद्धांत

मनुष्य कितना ही स्वार्थांध क्यों न बन गया हो और चाहे जैसे घातक अथवा कुटिल उपायों से काम लेने की उसकी तैयारी क्यों न हो, फिर भी अपने दिल की गहराई में उसे यह प्रतीति होती है कि सत्य ही सबसे श्रेष्ठ है और इसी कारण उसके मन में सत्य के लिए आदर और भय भी रहता ही है। मनुष्य मात्र के हृदय में सत्य के लिए यह जो गुप्त प्रतीति, आदर और भय पाए जाते हैं, वे सत्याग्रह के शस्त्र की बुनियाद हैं। इसी को मनुष्य के हृदय में विद्यमान 'अंतःकरण की आवाज' कहा जा सकता है।

स्वार्थ के वश होने वाला मनुष्य कुछ समय तक अंतःकरण की इस आवाज की उपेक्षा करता है, अथवा इसे दबा देने की कोशिश में रहता है; किंतु यदि उसका विरोधी सच्चा सत्याग्रही सिद्ध हो, तो अंत में उसे इस आवाज को सुनना ही पड़ता है। उसके सामने यह आवाज अनेक रूपों में प्रकट होती है : उसे अपने अन्याय का विश्वास हो जाए और उसके लिए पश्चात्ताप हो, यह उसका श्रेष्ठ प्रकार है। इसी का नाम 'हृदय-परिवर्तन' है। किंतु इससे कम तीव्रता के साथ भी यह आवाज उठ सकती है : उदाहरण के लिए, लोक-लाज के रूप में अथवा सर्वनाश के भय के रूप में।

जब सत्याग्रही का विरोधी कोई एक व्यक्ति नहीं, पर एक राष्ट्र, कौम या तंत्र होता है, तब ऐसा अंतर्नाद उससे अधिक चरित्रवान किसी मनुष्य को पहले सुनाई पड़ता है और पहले उसका हृदय-परिवर्तन होता है। बाद में वह मनुष्य अपने लोगों को यह आवाज सुनाता है और सत्य का पक्ष लेकर उनका विरोध भी करता है।

प्रत्येक सत्याग्रह का साध्य यह है कि विरोधी के हृदय को अंतःकरण की आवाज के प्रति जाग्रत किया जाए। अन्याय को दूर करने के लिए विरोधी को जो-जो भी कदम उठाने चाहिएं, वे सब इस साध्य में से, इसके परिणाम-स्वरूप, अपने-आप ही उठते हैं।

सत्याग्रह के सामान्य लक्षण

सत्य, अहिंसा आदि साधनों द्वारा ही अधर्म का विरोध

किया जा सकता है—यह सामान्य नियम सर्वत्र लागू होता है। अधर्म के नाश का धर्मयुक्त उपाय होना ही चाहिए, इस श्रद्धा से उत्कटतापूर्वक विचार करने वाले सत्याग्रही को विरोध करने की रीति सूझ ही जाती है। सत्याग्रह एक ऐसा उपाय है, जिसमें सत्याग्रही को ही कष्ट सहना होता है; विरोधी पक्ष को दुख देने का हेतु होता ही नहीं। अतएव यदि सत्याग्रही से कोई भूल हो जाए, तो हो सकता है कि उसके कारण उसे आवश्यकता से अधिक दुख सहना पड़ जाए। किंतु इस कारण सत्याग्रह के परिणामस्वरूप विरोधी के साथ शत्रुता बढ़ती नहीं, बल्कि घटती है; सत्याग्रह में एक पक्ष विजेता बने और दूसरा पक्ष पराजित हो, ऐसा कभी होता नहीं; उलटे, सत्याग्रह के अंत में दोनों पक्ष मित्र बनते हैं।

अधर्म का विरोध करने के लिए सत्याग्रह का योग्य प्रकार जब तक न सूझे, तब तक सत्याग्रही कोई भी कदम उठाने की उतावली नहीं करे। उस हालत में वह शांति से ईश्वर की प्रार्थना और जनता की अन्य सेवा करता रहेगा। वह यह श्रद्धा रखेगा कि ऐसा करते हुए एक दिन उसे स्पष्ट मार्ग सूझ जाएगा और उस समय उसमें उस पर अमल करने की शक्ति भी आ चुकी होगी; अथवा ईश्वर ही अपनी अनेक विध शक्तियों द्वारा उसका हल निकालेगा।

सत्याग्रह का शस्त्र संघ-बल पर अवलंबित नहीं रहता। किंतु, संघ-बल उसकी शक्ति बढ़ा सकता है। सच्चे और झूठे सत्याग्रह के भेद को परखने की एक कसौटी यह है—सत्याग्रह की सूचना करने वाला स्वयं अकेला रह जाए और उस हालत में वह अपनी सूचना का अमल करने को तैयार न हो, तो कहा जा सकता है कि वह सच्चा सत्याग्रही नहीं है। सच्चे सत्याग्रही को जो मार्ग स्पष्ट प्रतीत होता है, उस पर अमल करने के लिए वह अकेला भी तैयार रहता है। किंतु कोई अकेले-दम सत्याग्रह करने को तैयार हो, इसका यह अर्थ भी नहीं समझना चाहिए कि वह हमेशा उचित मार्ग पर ही चलता है।

सत्याग्रही झूठी प्रतिष्ठा का विचार नहीं करता। जब उसे अपनी विचारधारा में अथवा योजना में दोष दीखता है, तब वह कितना ही आगे क्यों न बढ़ गया हो, तो भी रुक जाने में अथवा पीछे कदम हटाने-जैसा लगे, तो वैसा करने में भी और अपनी भूल को कबूल करके जो नुकसान हो, उसे सह लेने में अथवा उसके लिए समुचित प्रायश्चित्त करने में भी शरमाता नहीं। क्योंकि सत्याग्रही सत्य की अपेक्षा दूसरे किसी भी विचार अथवा कारण को कम महत्त्व का समझता है। इससे उसका इष्ट कार्य बिगड़ता नहीं, बल्कि सुधरता है और उसकी प्रकट 'पीछे-हट' 'आगे-बढ़' थी—ऐसा बाद में सिद्ध होता है।

सत्याग्रह के प्रसंग

सत्याग्रही अपने निज के साथ हुए अन्यायों के लिए तुरंत सत्याग्रह शुरू नहीं करता। साधारणतः वह ऐसे अन्यायों को सहन कर लेगा और सहन करता हुआ विरोधी को प्रेम से जीतने का प्रयत्न करेगा। अपने प्रति होने वाले अन्याय के मूल में किसी सामाजिक अहित के होने पर ही वह साधारणतः सत्याग्रह द्वारा उसका विरोध करेगा।

इसी प्रकार व्यक्ति द्वारा होने वाले अन्याय और समाज अथवा सत्ताधारी की तरफ से होने वाले अन्यायों के बीच सत्याग्रही को भेद करने की जरूरत पड़ती है। इस अपूर्ण मानव-समाज में यह तो होता ही रहेगा कि बलवान व्यक्ति निर्बल को सताए। यह संभव नहीं है कि ऐसे प्रत्येक झगड़े में सत्याग्रही दखल दे सके। ऐसे समय उसे अपनी शक्ति, मर्यादा, अन्याय के प्रकार, उसके तात्कालिक महत्त्व, न्याय-प्राप्ति के सर्वमान्य वैधानिक साधन आदि का विचार करना होगा। इस सबके बावजूद, जहां स्पष्ट आवश्यकता प्रतीत हो, वहां वह अपने प्राण देकर भी अन्याय को रोकने का प्रयत्न करेगा।

सामाजिक और राजनीतिक अन्यायों के बीच भी विवेक से काम लेने की आवश्यकता होती है। एक अधर्म अथवा अन्याय ऐसा होता है कि उसमें कायदा अधर्मी या अन्यायी नहीं होता, पर उसका अमल अधर्म या अन्यायपूर्वक होता है और अमल करने वाला अपने अधर्म अथवा अन्याय को उस कायदे की ओट में छिपाता है, अथवा उसे अपना हथियार बनाता है। इसके लिए उसे न्याय अथवा धर्म का दंभ करना पड़ता है। अपूर्ण मानव-समाज में ऐसी घटनाएं भी घटती रहेंगी। जैसे-जैसे मानव-समाज में सद्गुणों की और परस्पर समभाव की सामूहिक वृद्धि होगी, वैसे-वैसे इस स्थिति में सुधार होगा। ऐसी दशा में यह मानकर संतोष करना होता है कि दंभ का आचरण करने वाले को न्याय और धर्म का जो दंभ करना पड़ता है, वही उसकी सत्य के प्रति अर्पित श्रद्धांजलि है। किंतु, जब ऐसा दंभ व्यापक बन जाता है, तो उसमें भी सत्याग्रह का प्रसंग और मार्ग निकल आता है। उदाहरण के लिए, जब सर्वत्र दमन चल रहा हो तब अपना बचाव न करना, बल्कि दंड सहन कर लेना, यही स्वतंत्र रूप से सत्याग्रह की एक रीति हो सकती है।

किंतु, जो अन्याय अथवा अधर्म निर्लज्जतापूर्वक—'तुम्हें जो करना हो, कर लो', इस भाव से—होता है, अथवा उसी को न्याय का, धर्म का या कायदे का नाम दिया जाता है, तो वहां सत्याग्रह कर्तव्यरूप बन जाता है। क्योंकि ऐसे अधर्म अथवा अन्याय को सहन कर लेने वाले की सत्त्व-हानि होती है।

सत्याग्रही कभी सत्याग्रह के अथवा सविनय-भंग के अवसरों की खोज में नहीं रहेगा, किंतु वह अपने को उनके लिए हमेशा तैयार रखेगा और जब सत्याग्रह कर्तव्यरूप होगा, तो उस प्रसंग का वह स्वागत करेगा।

सत्याग्रह के प्रकार

सत्याग्रह किन-किन तरीकों से हो सकता है, इसके सब प्रकार गिनाए नहीं जा सकते। अधर्म का स्वरूप, उसकी तीव्रता, उसका आचरण करने वाले व्यक्ति अथवा समाज की विशेषताएं, उसके साथ अपना संबंध, अपने तथा जिसका पक्ष उसने लिया हो उसके जीवन में से उक्त अधर्म को दूर करने में मिली सफलता—इन सब बातों पर सत्याग्रह की पद्धति, प्रकार और उसकी मात्रा निर्भर करती है।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि एक परिवार में रहने वाला व्यक्ति अधर्माचरण करने वाले दूसरे परिजनों के विरुद्ध जिन पद्धतियों का उपयोग करता है, वे ही पद्धतियां उचित रीति से समाज पर भी लागू हो सकती हैं।

इस प्रकार इसमें समझाइश से शुरू करके उपवास, असहयोग, सविनय अवज्ञा, उस परिवार-समाज-राज्य इत्यादि का त्याग, अपने न्यायोचित अधिकार का शांतिपूर्ण अमल और यह सब करते हुए जो संकट सामने आएं, उन्हें सहना—ऐसे अनेक प्रकारों का समावेश होता है। इनमें से योग्य उपाय और उसकी योग्य मात्रा का निर्णय करने में विवेक अथवा तारतम्य बुद्धि से काम लेना चाहिए। यह बुद्धि अनुभव से प्राप्त होगी। लेकिन, याद रहे कि सत्याग्रह अभी अपूर्ण रूप में विकसित शक्ति है। जो तपस्वी काया-वाचा-मनसा सत्य और अहिंसा का पालन करता हुआ इसकी शक्तियों का पता लगाने की मेहनत करेगा, उसे सत्याग्रह के अनेक नए प्रकार प्राप्त होंगे और उसकी शक्ति अखूट प्रतीत होगी। रचनात्मक कार्य में लगे रहना सत्याग्रह की बड़ी-से-बड़ी तालीम है।

सत्याग्रह सशस्त्र विद्रोह का स्थान भलीभांति ले सकता है। इसी तरह उसमें युद्ध को रोकने की शक्ति भी होनी ही चाहिए। आज यह नहीं कहा जा सकता कि उस शक्ति का बाह्य स्वरूप कैसा होगा, पर इसका अर्थ तो यही हुआ कि अधिक श्रद्धा से उसकी शक्तियों की खोज के लिए जूझा जाए।

समझाइश

विरोधी को समझाकर समाधानपूर्वक काम करने का प्रयत्न करना सत्याग्रही का पहला लक्षण और सत्याग्रह की पहली सीढ़ी है। ऐसी समझाइश के एक भी मार्ग को वह हाथ से जाने नहीं देगा। इसमें वह अपने धैर्य और उदारता की पराकाष्ठा का परिचय देगा। इसके लिए वह बिचवई का काम करने वाले मित्रों की मध्यस्थता की उपेक्षा नहीं करेगा और जिससे सिद्धांत का भंग न हो, ऐसी सब प्रकार की छूट या रियायत देने के लिए वह तैयार रहेगा।

समझाइश के प्रयत्न निष्फल हो जाएं और विशेष प्रकार की कार्रवाई करने का समय आए, तो उस दशा में वह विरोधी को एक अंतिम अवसर दिए बिना आगे नहीं बढ़ेगा। आगे बढ़ने के बाद भी वह समझौते के लिए हमेशा तैयार रहेगा और धोखा खाने के संकट को ओढ़कर भी वह अपनी समाधानप्रियता का और फिर से 'हरिः ॐ' करने की अपनी तैयारी का परिचय देगा। क्योंकि सत्याग्रही असहयोगी बनने, विरोधी बनने और तीव्र लड़ाई छेड़ने पर भी अपने खून में मौजूद सहयोग, मित्रता और समाधान की इच्छा को लुप्त नहीं होने देगा।

जब तक विरोधी के अंतर में हृदय-परिवर्तन होने लायक आवाज न उठे तब तक, अमुक अन्याय दूर हो जाए तो भी, यह नहीं कहा जा सकता कि उसका दिल साफ हुआ है और सत्याग्रह का कार्य पूर्ण हुआ है। इस कारण ऐसी स्थिति आने से पहले जितने समझौते हों, उनमें सत्याग्रही को कुछ रियायतें देनी पड़ती हैं और कुछ अन्यायों को पी जाना पड़ता है। ऐसा करके सत्याग्रही, मूल अन्याय को छोड़े बिना, उसे मिटाने की कोशिश के दरमियान किए जाने वाले दूसरे अन्यायों के प्रति उदार-वृत्ति का परिचय देता है।

उपवास

उपवास सत्याग्रह का एक प्रकार और तीव्र प्रकार है। किंतु इसका अवलंबन करने में बहुत उतावली और भूल हो सकती है। व्यक्ति के विरुद्ध किए जाने वाले सत्याग्रह में जिस हद तक उपवास किया जा सकता है, समाज अथवा तंत्र के विरुद्ध उस हद तक नहीं किया जा सकता। व्यक्ति के विरोध में भी उपवास-रूपी सत्याग्रह निरुपाय होने पर ही करना चाहिए। उपवास से विरोधी की न्याय अथवा

शेष पृष्ठ 38 पर

अणु-परमाणु बम के रूप में सर्वनाशी अस्त्र तो विज्ञान के पास विद्यमान हैं, पर उनके प्रतिअस्त्र की खोज में महावीर के दर्शन की ओर मुड़ना होगा। 20वीं सदी के पदार्थ विज्ञान के अनुसंधान केंद्र अंतरराष्ट्रीय धरातल पर प्रस्थापित हैं। कृत्रिम उपग्रहों एवं अंतरिक्षीय स्टेशन्स पर खरबों डॉलर खर्च हो रहे हैं, तथापि जीव की शक्ति को पूर्णतः पहचानना विज्ञान के क्षेत्र से परे है।

द्रव्य मीमांसा : जैन दर्शन का योगदान

साध्वी योगक्षेमप्रभा

प्राचीन भारतीय मनीषियों ने संस्कृति, कला, नैतिकता, धर्म, साहित्य, विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों में अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल कीं, तथापि उनका सर्वाधिक महनीय योगदान दर्शन के क्षेत्र में है। भारतीय दार्शनिकों ने पदार्थ जगत का विश्लेषण करने पर भी परमार्थ को गौण नहीं किया। ज्ञेय मीमांसा के साथ-साथ ज्ञाता की मीमांसा उनका प्रमुख ध्येय रहा। भारतीय एवं पाश्चात्य दार्शनिक परंपराओं में यही प्रमुख अंतर है। भारतीय दार्शनिकों के लिए शास्त्रावगाह आनंद और परमसमाधि का हेतु है। जगत और जीव की व्याख्या करते हुए भी प्रायः सभी भारतीय दार्शनिकों का सर्वोच्च लक्ष्य मुक्ति, निर्वाण, कैवल्योपलब्धि, विवेक ख्याति, अध्याससमुक्ति एवं ब्रह्मोपलब्धि के रूप में रहा है।

दर्शन की विभिन्न अवधारणाओं—सत्ताशास्त्र, सृष्टि विज्ञान, प्रमाणमीमांसा, ज्ञानमीमांसा, आचारमीमांसा आदि की व्याख्या एवं विश्लेषण प्रायः सभी दर्शनों में हुआ है। दर्शनशास्त्र का आधार है तत्त्वमीमांसा। इसे सत्ताशास्त्र अथवा द्रव्यमीमांसा भी कहा जाता है। जैन दर्शन की द्रव्यमीमांसा अतींद्रिय प्रत्यक्षण के आलोक में विकसित हुई है। यही कारण है कि जैन सत्ताशास्त्र, मूर्त-अमूर्त सभी द्रव्यों की सूक्ष्मता से व्याख्या करता हुआ जगत-स्वरूप की गुत्थी सुलझाता है।

जैन दर्शन की दृष्टि से जगत चेतन और अचेतन द्रव्यों का समवाय है। द्रव्य मूर्त और अमूर्त के रूप में भी विभक्त किए जा सकते हैं। द्रव्यों के विश्लेषण के अंतर्गत हम जानते हैं कि धर्म, अधर्म, आकाश और काल—ये चार सर्वथा अमूर्त द्रव्य हैं, अतः ये इंद्रियप्रत्यक्षगम्य नहीं हैं। पुद्गल द्रव्य मूर्त हैं, फिर भी सूक्ष्म स्कंध तथा परमाणु इंद्रियगम्य नहीं हैं। इन षट्द्रव्यों का समग्रता से अध्ययन जहां एक ओर हमें विश्वस्वरूप का बोध करवाता है वहीं दूसरी ओर आध्यात्मिक विकास का पथ प्रशस्त करता है। जैन दर्शन में ज्ञान मात्र ज्ञान के लिए न होकर जीवन-विकास के लिए है। ज्ञेय से ज्ञाता की ओर प्रस्थान ही इसका मुख्य-ध्येय है।

विश्व के समस्त द्रव्य परंपरा से संश्लिष्ट हैं, अतः द्रव्य का ज्ञान करने के लिए सभी द्रव्यों का ज्ञान आवश्यक है। आगमकारों ने इसीलिए कहा—जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है। तात्पर्य है कि एक द्रव्य को सभी विधि-निषेधोंपूर्वक अतीत, अनागत एवं वर्तमान पर्यायों सहित

जानना। जो व्यक्ति किसी अविशेषित एक परमाणु आदि को अथवा उसके अतीत-अनागत पर्यायों को जानता है, अथवा स्व-पर पर्यायों को जानता है—वह सभी स्व-पर पर्यायों को जानता है। प्रत्येक द्रव्य अतीत और अनागत पर्याय से युक्त होता है। समस्त वस्तु के परिच्छेद के बिना उसका ज्ञान संभव नहीं है।

ज्ञान के पश्चात् ही हेयोपादेय बुद्धि उद्भूत होती है। स्वद्रव्य एवं परद्रव्य के विवेक बिना ज्ञान नहीं हो सकता। हेय का वर्जन और उपादेय का ग्रहण, बाधक का त्याग एवं साधक का स्वीकार तत्त्वज्ञान के द्वारा ही संभव है। अतः तत्त्वज्ञान या द्रव्यों के परिज्ञान की उपयुज्यता स्वतःसिद्ध है। शुद्ध वैज्ञानिक धरातल पर तटस्थ बुद्धि से अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि जैन दर्शनसम्मत षट्द्रव्य एक समग्र विश्व की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।

दृश्य विश्व के संचालक द्रव्य मुख्यतः जीव और पुद्गल हैं। अजीव (पुद्गल) सृष्टि का जो नानात्व है, जितने दृश्य-परिवर्तन और परिणति-वैविध्य हैं—वे जीव के द्वारा निष्पादित हैं। जो कुछ दिखाई देता है वह या तो जीवच्छरीर है या जीवमुक्त पुद्गल। जीव का जो नानात्व या विभक्तिभाव है वह सब कर्म (पुद्गल) द्वारा निष्पन्न है। जीव के समस्त कार्यों के संचालन में सर्वाधिक सहयोगी पुद्गल द्रव्य ही है। आहार, शरीर, श्वासोश्वास, वचन और चिंतन—सबमें पौद्गलिक वर्गणाओं की सक्रिय भूमिका है। एक शब्द में कहें तो जीव के जीवन धारण में परम उपकारी द्रव्य पुद्गल है तो बाधक भी पुद्गल ही है।

आकाश सब द्रव्यों का आधार है। जो आकाश क्षेत्र द्रव्यों से अवगाहित है, वह लोक है। लोक सीमित है। उसका निश्चित परिमाण, आकार एवं आयतन है। लोक से परे असीम अलोक है, जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। वह रिक्त होते हुए भी वास्तविक है।

काल पदार्थ के परिणमन का हेतु है। इसका अस्तित्व वर्तमानवर्ती होते हुए भी सब द्रव्यों एवं सब पर्यायों पर प्रतिक्षण अनुवर्तन करता है। नैश्चयिक काल सर्वत्र विद्यमान है। व्यावहारिक काल सूर्य-चंद्र की गति-सापेक्ष होने से मनुष्यलोक में ही है।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य की अवधारणा जैन दार्शनिकों की अतींद्रिय सृष्टि से समुद्भूत हैं। ये दोनों अमूर्त, निष्क्रिय होते हुए भी क्रमशः गति और स्थिति के अनन्य हेतु हैं। जगत के समस्त चल-भाव धर्मास्तिकाय के बिना संभव नहीं हैं। जीव और पुद्गल की समस्त क्रियाओं में उदासीन हेतु होने पर भी धर्मद्रव्य गति का अपरिहार्य कारण है। जीव की स्थूल गति से लेकर कोशिकागत क्रियाओं तक के संचालन में धर्मद्रव्य का साहाय्य अनिवार्य है। अधर्म द्रव्य का स्थिति-साहाय्य भी स्थूल स्थैर्य से लेकर सूक्ष्म जगत की स्थिरता में अपरिहार्य रूप से प्राप्त होता है।

इस प्रकार ये छहों द्रव्य मिलकर विश्व का वैश्वरूप सम्पादित करते हैं। गति में स्थिरता और स्थिरता में गति—ये दोनों धर्म व अधर्म द्रव्यसापेक्ष हैं। आकाश आधार प्रदान करता है तो परिणमन का कारक काल है। जीव और पुद्गल इन चारों से युगपत साहाय्य प्राप्त कर अपनी गतिविधियों को संचालित करते हैं।

जैन दार्शनिकों की विशिष्टता इसी में रही कि उन्होंने विश्व-व्यवस्था के नियामक जिन शाश्वत तत्त्वों की उद्घोषणा की, वे किसी प्रयोगशाला के परीक्षणों या उपकरणों से प्रादुर्भूत न होकर ज्ञान की पूर्णता के आलोक में दृष्ट थे। पिछली कुछ शताब्दियों में भौतिक विज्ञान भी पूर्णता का विश्लेषण करने हेतु कृतसंकल्प हो प्रयोगभूमि में उतरा। देश, काल और द्रव्य के संदर्भ में वैज्ञानिक प्रयोगों एवं प्रशिक्षण की लंबी शृंखला है। अत्याधुनिक उपकरणों एवं संवेदनशील संसाधनों से विज्ञान ने अनेकानेक नूतन तथ्य उजागर किए। न्यूटनीय सिद्धांतों की प्रयोगभूमि पर आधृत विज्ञान 19वीं सदी के अंत तक अत्यंत निश्चिंत था। दो सौ वर्षों तक विज्ञान ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ प्रकृति के नियमों की व्याख्याएं प्रस्तुत करते हुए देश (आकाश) और काल-संबंधी विश्लेषण किया।

प्रकाश एवं तरंगों के यात्रा-पथ के रूप में भौतिक ईथर का जन्म हुआ। गति माध्यम के रूप में ईथर की तीव्र अपेक्षा ने उसके अस्तित्व की अभिसिद्धि में हर संभव प्रयास किया। हजारों परीक्षणों एवं प्रयोगों के बाद भौतिकविदों को ईथर को विवशता से छोड़ना पड़ा। यद्यपि उन्हें आज भी गति-माध्यम की अपेक्षा है। जैसा कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंग्टन कहते हैं—यह सच है कि भौतिकी ने ईथर को अलविदा कह दिया है, किंतु हमें आज भी ईथर की अपेक्षा है। पर वह ईथर भौतिक नहीं, अभौतिक है। इस संदर्भ में और भी कई वैज्ञानिकों के कथन स्मरणीय हैं जिन्होंने अभौतिक ईथर की खोज की अपेक्षा को महसूस किया है।

वैज्ञानिकों की इस अपेक्षा को धर्मास्तिकाय पूर्णता प्रदान करता है। वैज्ञानिक जिस ईथर को ढूंढ़ रहे हैं, वह अभौतिक द्रव्य है। जैसा कि स्पष्ट है, अभौतिक द्रव्य इंद्रिय-चेतना, तर्क या उपकरणों से गम्य नहीं हो सकता। इसे ज्यों-का-त्यों परीक्षणों की भूमि पर नहीं उतारा जा सकता। इस संदर्भ में यदि जैन दृष्टि के साथ विज्ञान का समन्वय हो तो धर्मास्तिकाय के रूप में अभौतिक ईथर का युक्तियुक्त विवेचन विज्ञान को नई दिशा प्रदान कर सकता है। स्थिति के माध्यम के रूप में वैज्ञानिकों द्वारा क्षेत्र (Field) की कल्पना अधर्म द्रव्य से काफी निकट है। क्षेत्र के माध्यम से ही गुरुत्वशक्ति एवं विद्युत चुंबकीय शक्तियां कार्य करती हैं। यह भी अभौतिक एवं क्रियारहित द्रव्य है। क्षेत्र का सिद्धांत आईंस्टीन के युनिफाइड क्षेत्र (Unified field) सिद्धांत से प्रमाणित हो चुका है। आकाश की व्याख्या वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रकार से की है।

न्यूटन, आईंस्टीन, जेम्सजीन्स, हर्मनवाइल, पोइनकेरे, बोहर, हाइजनबर्ग, राइसन बॉख प्रभृति वैज्ञानिकों ने आकाश को नाना संदर्भों से विवेचित किया है। किसी ने आकाश को ससीम कहा है तो किसी ने अनंत। कोई रिक्त आकाश को मान्य करते हैं तो कोई संपूर्ण अवगाहित आकाश की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।

किसी ने आकाश को बेलनाकार कहा है तो किसी ने वक्र। इस दृष्टि से जैन दर्शन की आकाश की अवधारणा संपूर्ण आकाश सिद्धांत को प्रस्तुत करती है। जैन दृष्टि से लोकाकाश ससीम है। अलोकाकाश असीम (अनंत) गति-स्थिति के माध्यम का अभाव होने से वहां अन्य द्रव्यों की विद्यमानता नहीं है तथा न ही ऊर्जा या शक्ति वहां जा सकती है। लोकाकाश वक्र है, क्योंकि त्रिशरावसंपुटाकार है। विश्व न फैलता है—यह हमारे ज्ञान की सीमा है। जैसे-जैसे ज्ञान की निर्मलता बढ़ती है, उपकरणों की संवेदनशीलता बढ़ाई जाती है, ज्ञान-क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। अतः कहना होगा, जिसे विश्व का विस्तार कहा जाता है, वह वस्तुतः ज्ञान-क्षेत्र का विकास है।

भौतिक द्रव्य और जीव के संबंध में 20वीं सदी में भौतिक विज्ञान ने उल्लेखनीय प्रगति की है। द्रव्य, जीवन और मानस आधुनिक विज्ञान के तीन स्तंभ हैं जिन्हें क्रमशः 1. क्वांटम क्रांति, 2. जीवाणुक्रांति, 3. कंप्यूटर क्रांति से व्यक्त किया जा सकता है।

क्वांटम क्रांति ने द्रव्य (पुद्गल) के संबंध में विज्ञान की नियत धारणा को तोड़ते हुए अपूर्णता और अनिश्चितता के सिद्धांत को जन्म दिया।

भौतिक पदार्थ की चरम इकाई की खोज में 'क्वार्क' की परिकल्पना सामने आई। अनेक प्रयोगों और परीक्षणों के बावजूद भी क्वार्क का वास्तविक रूप ज्यों-का-त्यों प्राप्त नहीं हो सका है। आधुनिक विज्ञान जैन-सम्मत परमाणु के समकक्ष सूक्ष्म घटक का परिज्ञान नहीं कर पाया है। जैन परमाणुवाद की प्राचीनता व तर्कसंगतता जर्मन विद्वान हर्मन् जेकोबी के मंतव्य से भी प्रमाणित होती है। आज नाभिकीय भौतिकी में अणु-परमाणु का जो विश्लेषण प्राप्त होता है, उससे अधिक सूक्ष्म एवं युक्तियुक्त विश्लेषण भगवान महावीर के परमाणुवाद का है।

जैन दर्शन-सम्मत पुद्गल सिद्धांत वैज्ञानिक अन्वेषणों से परिपुष्ट हुआ है। भौतिकी ने शब्द को ट्रांसमीटर या वायरलेस के माध्यम से स्थानांतरित किया। टेलेक्स और फेक्स के द्वारा अक्षरों की एवं टेलीविजन के माध्यम से प्रतिच्छाया को पौद्गलिक परिणति के सिद्धांत के आधार पर ही स्थानांतरित किया।

फ्यूसन-फिजन बम की शक्तियां भी पुद्गल की अपार शक्तियों की सूचक हैं। जैन दर्शन में तेजोलेश्या या तेजोलब्धि का जो विवेचन है वह जीव की शक्ति के साथ पुद्गलों से भी जुड़ा हुआ है। तेजोलेश्या-संपन्न व्यक्ति जब किसी पर उसका प्रयोग करता है तो उसके द्वारा उत्कृष्ट 16 हजार देश भस्मीभूत हो सकते हैं। ऐसी दुर्धर्ष शक्ति नाभिकीय ऊर्जा में भी है, किंतु जैन दार्शनिक इस दृष्टि से कई कदम आगे हैं। जहां तेजोलेश्या की भयंकरता विनाशलीला रचने में समर्थ है, वहीं शीतल तेजोलब्धि उसे पूर्णतः समाप्त करने में समर्थ है।

अणु-परमाणु बम के रूप में सर्वनाशी अस्त्र तो विज्ञान के पास विद्यमान हैं, पर उनके प्रतिअस्त्र की खोज में महावीर के दर्शन की ओर मुड़ना होगा। 20वीं सदी के पदार्थ विज्ञान के अनुसंधान केंद्र अंतरराष्ट्रीय धरातल पर प्रस्थापित हैं। कृत्रिम उपग्रहों एवं अंतरिक्षीय स्टेशन्स पर खरबों डॉलर खर्च हो रहे हैं, तथापि जीव की शक्ति को पूर्णतः पहचानना विज्ञान के क्षेत्र से परे है।

जीवाणुक्रांति आधुनिक जैविकी का महत्त्वपूर्ण अवदान है। क्वांटम गतिकी के आविष्कर्ता श्रोडिंजर ने 'व्हाट इज लाइफ' (What is life) पुस्तक में स्पष्ट लिखा है कि किसी भी जीव की विशिष्टताएं उसकी कोशिकाओं

में जीवाणुओं पर स्पष्ट रूप से अंकित होती हैं। भारतीय वैज्ञानिक डॉ. खुराना ने इस संदर्भ में उल्लेखनीय योगदान दिया है। डी.एन.ए. अणुओं की द्वि-हेलिकल संरचना का स्पष्टीकरण एक्स-रे मणिभीकरण की पद्धति से होने के बाद अधिकांश जीवाणुओं तथा विषाणुओं के 'जेनेटिक कोड' को पूर्णतया परिभाषित करना संभव हो गया है। जैन दर्शन के अनुसार जीव के स्वभाव, गुण, क्रियाएं—सब उसके कर्मानुगत होते हैं। सब-कुछ कर्मजन्य संस्कार सूत्रों में पूर्व-उल्लिखित रहता है। 'जीन बॉयोटेक्नोलॉजी' के साथ कर्म का तुलनात्मक अध्ययन अध्यात्म और विज्ञान, उभयक्षेत्र में अनेक सूक्ष्म रहस्यों को अनावृत कर सकता है।

'कंप्यूटेशन' (कृत्रिम समझ) और चेतन सोचने की क्षमता में मौलिक अंतर है। पिछले कुछ वर्षों में कंप्यूटर की क्षमताओं में आशातीत वृद्धि हुई है। कंप्यूटर के घटते आकार और बढ़ती कार्यक्षमता का कमाल स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। 'लेसर' और 'इंटरनेट' प्रणाली से जुड़कर घर बैठे विश्व के हर कोने की जानकारियां संभव हैं। मानव मस्तिष्कीय न्यूरोन्स की कार्यगति जहां प्रति सैकंड 10^3 है, वहां कंप्यूटर में ट्रांजिस्टर की कार्यक्षमता लाखों गुना ज्यादा, 10^9 प्रति सैकंड है। इतना सब-कुछ होने पर भी जीव की क्षमताओं से कंप्यूटर की क्षमता अधिक नहीं है। क्योंकि जीव या मनुष्य ने कंप्यूटर को बनाया है, कंप्यूटर ने मनुष्य को नहीं।

ज्ञान के क्षेत्र में जीव के विकास की जिन अनंत संभावनाओं का जैन दार्शनिकों ने विश्लेषण किया है, वह जैन ज्ञानमीमांसा का एक महत्त्वपूर्ण प्रस्थान है। इंद्रिय, बुद्धि, तर्क एवं शास्त्रजन्य ज्ञान की सीमा होने पर भी अतींद्रिय आत्मसापेक्ष ज्ञान की अनंतता का उद्घोष वास्तविक ज्ञान की सीमा का स्वतः निराकरण करता है। अतींद्रिय-प्रत्यक्षण आदि ज्ञान के परामनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों के साथ जीव की ज्ञान-क्षमताओं का अध्ययन ज्ञान के क्षेत्र में कुछ नवीन आयामों को उद्घाटित कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैन पदार्थ विज्ञान का आधुनिक विज्ञान, मनोविज्ञान एवं परामनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाए तो अनेक गूढ़ संकेत प्राप्त हो सकते हैं। अनेक अनुत्तरित प्रश्नों का सटीक समाधान खोजा जा सकता है।

प्राचीनकाल में जो अनुभव प्रत्यक्ष एवं आस्था के विषय थे, संप्रति वे वैज्ञानिक प्रयोगों से सत्यापित हो रहे हैं। जैन दर्शन की कुछ मौलिक अवधारणाएं, जो किसी भारतीय दर्शन या पाश्चात्य दर्शन में भी स्पष्टतया संप्राप्त नहीं होती हैं, उन्हें आज वैज्ञानिक धरातल से पुष्टि मिल रही है। आकाश और काल की अनंतता व सह-अस्तित्व, मनुष्यलोक से बाहर जीव-सृष्टि का सद्भाव, तमस्काय (Black Hall), परमाणु की उत्कृष्ट गति, पुद्गल का परिणति वैचित्र्य, गर्भविज्ञान, लोक के स्वरूप की व्याख्या, स्थावर एवं त्रस जीव-सृष्टि, गति-स्थिति के माध्यमों की उपयुक्तता, लोक-अलोक विभाजन—ये जैन द्रव्य-मीमांसा के कुछ ऐसे संप्रत्यय हैं, जिनका विज्ञान के आलोक में विश्लेषण न केवल उनके अस्तित्व को प्रमाणित करेगा, अपितु समसामयिक संदर्भों में उनकी उपयोगिता को समझने की दृष्टि भी प्रदान करेगा। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

- आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।
- रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।
- फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

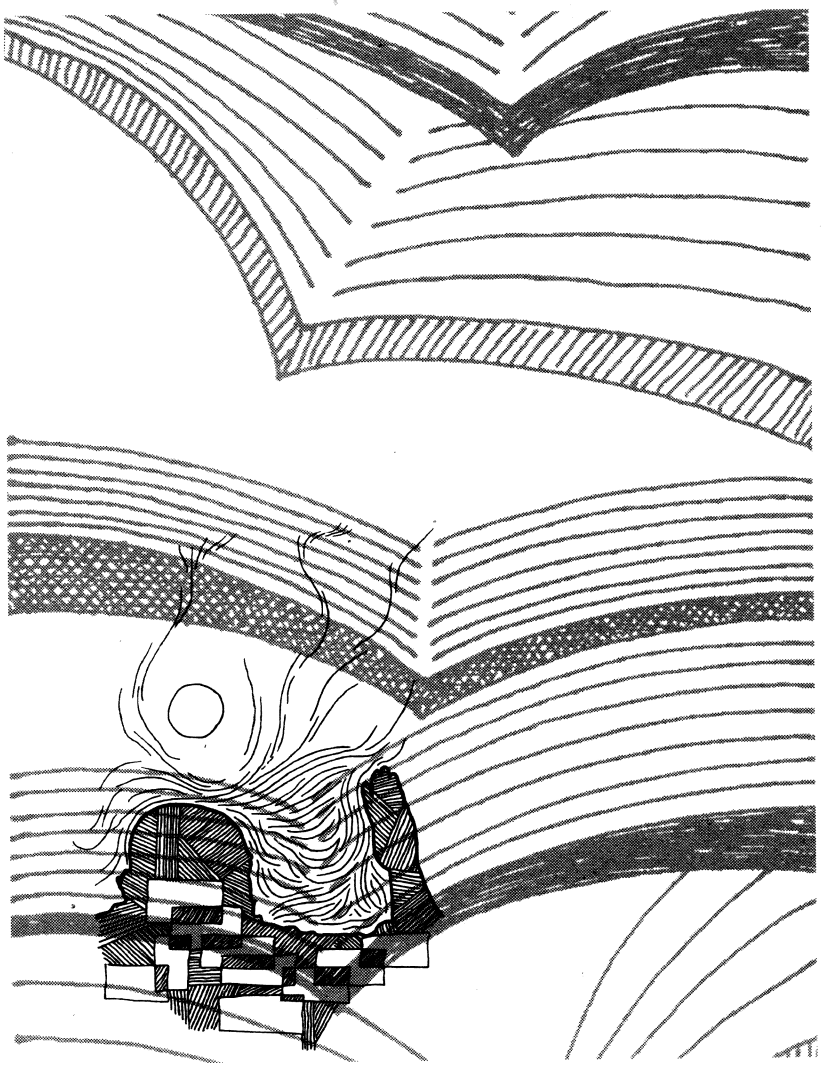

अनुभूति

मैं बीतते को देखना चाहता हूं
पल-पल बीतने को,
अक्षर-अक्षर छितराने को,
पंखुरी-पंखुरी कुम्हलाने को।

हो सके तो मैं बचाना चाहता हूं
सुंदरता को समय से,
अपनी पगडंडी को किसी मार्ग में लय होने से,
अपने सच को अपने ही अंदर मुरझाने से,
अपनी आवाज को थरथराने और घबराने से।

—अशोक वाजपेयी

जीवन-भर विरोधों की आंच में पकने वाले और विरोध में भी विनोद का अनुभव करने वाले महर्षि तुलसी सदा शांत-सौम्य ही नजर आते रहे। इसीलिए हर नयन उन्हें समतायोगी के रूप में पहचानता रहा। समता के शाश्वत स्वर की अनुगूंज आज भी हर किसी को मंत्रमुग्ध कर डालती है। समता के साधक उस 'वीर' के प्रति आज भी हर नेत्र नत होता है। समता के उपासक उस 'वीर' के प्रति हर वाणी श्रद्धा के स्वर में मुखर होती है। संघर्षों की आंधी और तूफानों में व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की दीपशिखा को प्रज्वलित रखने वाले उस महामानव को विश्व का हर मानव श्रद्धा से नमन करता है।

तुलसी—श्रीसंपन्न निस्पृह योगी

समणी अमितप्रज्ञा

महर्षि वाल्मीकि ने नारद ऋषि से एक प्रश्न किया, यदि उसका आकलन किया जाए तो समाधान स्वरूप भगवान श्रीराम का चेहरा सामने आता है। अंतस् में जिज्ञासा हुई—चरित्र-संपन्न पुरुष कौन? महापुरुष कौन? इस प्रश्न का उत्तर ऋषि वाल्मीकि को मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन में मिलता है। वाल्मीकि के सम्मुख चरित्र-योग की सच्ची जिज्ञासा थी। उनका अंतःकरण महापुरुष की खोज में निमग्न था और लगता है कि चरित्रवान व्यक्ति को ढूंढ़ने के लिए ही 'रामायण' का जन्म हुआ। महापुरुष की खोज के लिए ही भारतीय साहित्य में रामायण को प्रसूत होने का अवसर मिला। उस सदी का चरित्रवान पुरुष, उस सदी का महापुरुष अध्यात्मद्रष्टा ऋषि की लेखनी से श्रीराम के रूप में निःसृत हुआ।

पावन जन्मोत्सव
कार्तिक शुक्ला दूज
24 अक्टूबर
विनम्र हर्षाभिवादन

प्रत्येक युग में चरित्र-संपन्न एवं नीति, न्याय और धर्म जैसे मूल्यवान गुणों को अपने जीवन में प्रधानता देकर महापुरुषगण स्वयं के अनुभव रूपी खजाने का नूतन पाठ व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को पढ़ाते रहे हैं। महापुरुषों का चिंतन होता है—'सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।' व्यक्ति, समाज एवं विश्व को ऐसे महापुरुषों की बड़ी देन रही है। ऐसे महापुरुषों के प्रति तन, मन और धन से सर्वात्मना समर्पित होकर ही जन-समाज उनके ऋण से उऋण हो सकता है।

सतयुग हो, चाहे कलियुग। चौथा आरा हो, चाहे पंचम आरा हो—यह वसुंधरा बहुरत्ना है। महर्षि वाल्मीकि के गुणों की तालिका को सामने रखकर यदि बीसवीं सदी के चरित्र-संपन्न पुरुष को ढूंढ़ने हम निकलें, तो एक पुरुष हमें मिलेगा, वह पुरुष होगा—'तुलसी'। वाल्मीकि को 'मर्यादा पुरुषोत्तम राम' मिले, तो बीसवीं सदी के मानव-समाज को मानवता के मसीहा 'तुलसी' मिले। 'राम' और 'तुलसी'—अभिधान का यह अद्भुत संयोग है और बड़ी ही अद्भुत समानता को लेकर दृष्टिगोचर हो रहा है। राग जिसका मृत हो चुका है, वह

'राम' है। इसी तरह जगती में पवित्रता के लिए 'तुलसी' विख्यात हैं। अपनी पवित्रता से राग का शमन करने की दिशा में जिनके चरणयुगल सतत प्रवहमान हैं, निरंतर गतिशील हैं—वही 'तुलसी' है। नाम का यह साम्य गुणों से भी साम्यता को प्रकट कर रहा है।

तमसः परस्तात्

'तमसः परस्तात्'—एक महापुरुष के लिए यह महत्त्वपूर्ण विशेषण है। यह विशेषण जहां राम के जीवन में चरितार्थ हुआ, तुलसी जीवन-दर्शन में भी शंतशः सार्थक हुआ। 'तमसः परस्तात्' में महापुरुष की विशिष्ट एवं सार्वभौम परिभाषा निहित है। तुलसी की सकारात्मक सोच से एक नूतन क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ। ज्ञानरूपी सूर्य ने द्वार पर दस्तक दी। अहंकार अंधकार है, ज्ञान ही प्रकाश है। ज्ञान के महाआलोक में सदियों से सुप्त संस्कार जागृति का संदेश पा उठ खड़े हुए। मन एवं आभामंडल की पवित्रता द्वारा चारों ओर की बाधाएं स्वतः दूर होती चली गईं। संघर्षों की लपटों को भी अपनी दिशा बदलनी पड़ी। अंतःकरण के तेज ने पवित्रता को प्रस्फुटित किया और यह प्रकाश, यह तेज अनेक रूपों में सामने आया। धृति, अभय, गंभीरता, मैत्री, सहिष्णुता, आत्मानुशासन, सद्भाव आदि दैवीगुण उस महामनीषी महापुरुष 'तुलसी' के आंतरिक प्रकाश के ही उदाहरण कहे जा सकते हैं। यह महामनीषी तुलसी तेरापंथ के नवम अधिष्ठाता और अणुव्रत आंदोलन के जनक हैं जिन्हें आज समाज का हर वर्ग आचार्य तुलसी के नाम से स्मरण करता है। अपने जीवनकाल में ही स्वेच्छा से तेरापंथ के अधिष्ठाता के पद से मुक्त होने वाला यह महामना तब अपने शिष्यों, भक्तों की श्रद्धा के आगे अवश दिखलाई दिया और 'गणाधिपति गुरुदेव तुलसी' कहलाया।

वासीचंदनतुल्यता

मान-अपमान, स्तुति-निंदा, अनुकूलता-प्रतिकूलता सब स्थितियों में 'वासीचंदनतुल्यता' विशेषण समता भाव की उत्कृष्टता का निदर्शन कराता है। 'राम' और 'तुलसी'—दोनों ही महापुरुषों के जीवन में यह समताभाव समान नजर आता है। श्रीराम के पास सहज विवेक था, अटूट पुरुषार्थ था, अदम्य साहस था एवं अपने-आप में रहने की अद्वितीय कला थी। तभी एक ओर जब तेजस्वी भाल पर राजतिलक की तैयारियां हो रही थीं कि दूसरे ही क्षण चौदह वर्ष के वनवास का कठोरतम आदेश सुनाया गया, तो भी मुखमंडल पर सहजसौम्य भाव ही टपक रहा था। श्रीराम के समता सिंधु में अवगाहन का ऐसा नव्य नजारा पिता दशरथ को उनकी मुखाकृति की सौम्यता में दिखाई दे रहा था। तभी तो पितृहृदय बोल उठा—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न लक्षितो मया तस्य स्वल्पोप्याकारविभ्रमः।।

गुरुदेवश्री तुलसी की जन्मकुंडली में भी राजयोग, प्रबल अभ्युदययोग के साथ-साथ सहजन्मा प्रबल संघर्षयोग भी था। जीवन-भर विरोधों की आंच में पकने वाले और विरोध में भी विनोद का अनुभव करने वाले महर्षि तुलसी सदा शांत-सौम्य ही नजर आते रहे। इसीलिए हर नयन उन्हें समतायोगी के रूप में पहचानता रहा। समता के शाश्वत स्वर की अनुगूंज आज भी हर किसी को मंत्रमुग्ध कर डालती है। समता के साधक उस 'वीर' के प्रति आज भी हर नेत्र नत होता है। समता के उपासक उस 'वीर' के प्रति हर वाणी श्रद्धा के स्वर में मुखर होती है। संघर्षों की आंधी और तूफानों में व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व की दीपशिखा को प्रज्वलित रखने वाले उस महामानव को विश्व का हर मानव श्रद्धा से नमन करता है।

आवेश के घने कुहासे में भी समताभाव की अखंड साधना में निरत उस साधक के स्मरण के साथ ही महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध काव्य 'रघुवंश' के एक पद्य की भी याद आ रही है—

तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।
अलंघनीयताहेतुद्वयमेतद् मनस्विनि।।

'वासीचंदनतुल्यता' की स्थिति जीवन-व्यवहार में अवतरित कैसे हो सकती है, इसका उपाय बताते हुए उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं—

समतापरिपाके स्यात् विषयग्रहशून्यता।
ययाविशदयोगानां वासीचंदनतुल्यता।।

इंद्रियविषय की अनासक्ति हमारे योगों को निर्मल बनाती है। निर्मलता से 'वासीचंदनतुल्यता' की स्थिति घटित होती है। 'राम' एवं 'तुलसी'—दोनों की उत्कृष्ट अनासक्ति उनके जीवन में इस विशेषण की सार्थकता सिद्ध करती है।

अनुपम व्यक्तित्व

चरित्र के आदर्श में शरीर और मन, दोनों का विकास सम्मिलित है। इस दृष्टि से श्रीराम बाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य एवं चित्त की एकाग्रता के सजीव चित्र हैं। शांति एवं

न्याय का जन्म उनके पवित्र अंतःकरण की ही पहचान है। रामराज्य आज भी उदाहरण बना हुआ है।

शास्त्रों में आचार्य के लिए 'अष्टगणिसंपदा' से सुशोभित विशेषण प्रयुक्त हुआ है। गुरुदेवश्री तुलसी का भव्य भाल, देदीप्यमान उणिहार, आंखों में शनि, कान पर ऊगे हुए केश—उनके बाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य का प्रकटीकरण करते हुए 'शरीर-संपदा' के विशेषण को सार्थक कर रहे हैं। वस्त्रधारण करने की कला शारीरिक सौंदर्य की अभिवृद्धि में चार चांद लगाती है। चुंबकीय व्यक्तित्व के धनी, अप्रतिम मेधावी, प्रखर पौरुष की जीवंत कहानी महामहिम तुलसी की शारीरिक संपदा को निरख यदि महावीर-युगीन कोई सम्राट् श्रेणिक होता तो उसके सहज स्वर नभ-धरती में गुंजायमान हो उठते—

अहो! वण्णो अहो! रूवं, अहो! अज्जस्स सोमया।
अहो! खंती अहो! मुत्ती, अहो! भोगे असंगया।।

वाचना-संपदा यानी अध्यापन-कौशल भी उनका बेजोड़ था। 'तुलसी पौशाल' के छात्र घंटों-घंटों तक उनके सामने बैठकर नाममाला, कालुकौमुदी कंठस्थ किया करते। उनके अध्यापन का एक क्रम था। जब कभी पढ़ते-पढ़ते उनके छात्र थक जाते, इधर-उधर घूमने लगते, हंसी-मजाक करते दिखाई देते या असमय में नींद लेते नजर पड़ते तो तुलसी का कठोर अनुशासन देखने लायक होता था। गलती करने पर प्रायश्चित्त देते, पर स्नेह और वात्सल्य में कमी नहीं आने देते। तभी तो तुलसी उन्हें कहते—'कितना ही पगपीटा करो, गलती का दंड तो भुगतना ही होगा।' अनुशासन की अद्भुत कला, छात्रों की समस्याओं का समाधान, मेधावी एवं होनहार छात्रों के प्रश्नों के सटीक उत्तर—तुलसी के शिष्य समुदाय को अभी भी याद हैं। तुलसी भी अल्पवयस्क ही तो थे उस समय। फिर भी उनकी श्रुत-समृद्धि से यह एहसास होता था कि उनकी जिह्वा पर सरस्वती का वास है। अलमस्त फकीरी में आचारसंपदा, शरीरसंपदा, श्रुतसंपदा, वचन-संपदा का सौंदर्य चारों ओर अलौकिक आभा फैलाता प्रतीत होता था। अपनी निराकांक्षी साधना से सिर्फ शरीर को ही नहीं, उसके साथ-साथ मन को भी तपाने वाले अध्यात्म के उस शिखर पुरुष के प्रति उत्तमांग सहज ही प्रणत हो जाता है।

श्रीसंपन्न निःस्पृह योगी

धन-वैभव के स्वामी होते हुए भी राम के चौदह वर्ष वनवास में बीते। दूसरों की खुशी के लिए श्रीराम ने सुविधा को संन्यास दिया। कष्टों की घड़ियों में भी व्यक्तित्व ज्ञानादि-श्रीसंपन्नता का एहसास कराता था।

अकिंचन होते हुए भी युवा तुलसी शासक बने। कैसे? लौकिक प्रवाद है—'यत्राकृतिस्तत्र गुणाः वसन्ति'—जहां आकृति है, वहां गुणों का निवास है। बृहद्वृत्ति में कहा गया—'गुणवति धनं ततः श्रीः श्रीमत्याज्ञा ततो राज्यमिति'—गुणवान के प्रति धन आता है। उससे उसकी शोभा बढ़ती है। उनमें आदेश देने की क्षमता बढ़ती है और अंततोगत्वा वह राजा होता है। प्रभावी आकृति, प्रभावी व्यवहार ने 'मुनि तुलसी' को तेरापंथ का सरताज बनाया। अकिंचन के पास अपना कुछ भी नहीं होता। फिर भी वह संपूर्ण विश्व की संपदा का सहज स्वामी बन जाता है—

अकिंचनोहमित्यास्व, त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत्।
योगिगम्यमिदं तथ्यं, रहस्यं परमात्मनः।।

गुरुदेवश्री तुलसी कहा करते थे कि चार मंत्रियों को सदा अपने साथ रखो। वे हैं—शिक्षामंत्री—विवेक, अर्थमंत्री—पुरुषार्थ, रक्षामंत्री—साहस, गृहमंत्री—जो आत्मसदन में बैठ चिंतन करे। सजग प्रहरी इन चार मंत्रियों के निरंतर साहचर्य से अपनी मंजिल की ओर आगे बढ़ते रहते हैं।

महापुरुष के रूप में दैवी गुणों का एक घनीभूत तेजपुंज प्रकट हो अपनी असाधारण चेतना से समाज के जर्जरित शरीर को झकझोर गया। और, एक सशक्त संगठन के रूप में 'तेरापंथ' की विरासत मजबूत हाथों में सौंप गया। मानवता के लिए किया गया ऐसा प्रखर पुरुषार्थ शताब्दियों तक मानव-जाति का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

'गलती न करने वाली मशीन' और 'गलती न करने वाले मनुष्य'—इन दोनों में से किसी एक को पसन्द करना पड़े तो मनुष्य को ही पसन्द करना पड़ेगा। गलती से बहुधा सत्य का जन्म होता है, पर मशीन से किसी भी दशा में मनुष्य नहीं निकल सकता।

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

किससे, कब, क्या, कितना कहें और कहां कितना सहें—यह विवेक साथ चलेगा तो विश्वास कभी टूटेगा नहीं और अविश्वास कभी पनपेगा नहीं। बिगड़ी बात को भी बनाया जा सकता है और संबंधों की ताजगी को कायम रखा जा सकता है। मधुर संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए यह जरूरी है कि आपस में एक-दूसरे को समझ लेने के बाद समय पर झुकना सीखें, पहल करना सीखें। परस्परता में जब विश्वास का सेतु निर्मित हो जाएगा तब कोई दुराव पैर नहीं जमा पाएगा।

समझ : सहजीवन की बुनियाद

समणी सत्यप्रज्ञा

समुदाय की प्रथम इकाई परिवार है। संबंधों का सिलसिला ही व्यक्ति को व्यापक समुदाय से जोड़ता है। प्रेम, स्नेह और सहयोग की नींव पर टिके संबंध ही वस्तुतः स्वस्थ संबंध कहलाते हैं। व्यवहार में खिले मैत्री के फूलों की महक ही दूर तक जाती है। पर, आज ऐसी महक विरल होती जा रही है। इसका कारण भी स्पष्ट है। व्यक्ति तनाव का जीवन जीता है। सामान्यतः हमारी संवाद-शैली से विध्वंसात्मक तनाव पैदा होता है। बहुधा इस तरह के तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों का यह शिकायती स्वर उभरता है कि—'मुझे कोई समझे तो सही!' पर, उनका ध्यान इस ओर शायद ही कभी जाता हो कि—'मैं भी तो किसी को समझने की कोशिश करूं!' अपने व्यवहार के संदर्भ में विश्लेषण से हम आत्म-पराजय, हीनता की ग्रंथि या परस्परता की दूरियों के कारण खोज सकते हैं और चाहें तो उचित परिवर्तन की दिशा में भी प्रस्थित हो सकते हैं।

चंचल तितली की तरह कुछ लोग किसी की पकड़ में नहीं आते। बचकर निकलना इनकी आदत होती है। इनकी स्वच्छंद मनोवृत्ति संघर्ष को हर हालत में टालना चाहती है। जब भी कोई संघर्ष या समस्या उनके सामने आने को होती है, या तो वे समय से पूर्व ही मैदान छोड़ भाग खड़े होते हैं, या किसी और बहाने से उसे टालने की कोशिश करते हैं। जैसे—अभी बहुत व्यस्त हूं, बाद में इस बारे में बात करेंगे। या, अभी बहुत थका हूं, नींद बहुत जोरों से आ रही है। मजाक में बात को उड़ा देना या किसी भी तरीके से सामने वाले को विषयांतर कर देने में ऐसे लोग बड़े माहिर होते हैं। विषय बदल कर वे किसी भी संवेदनशील समस्या को उभरने से रोक देते हैं। समस्या से निजात पाने की इस मानसिकता वाले लोग अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं समझ सकते। 'मूड' ही इनका मालिक होता है।

कुछ लोग होते हैं जो न केवल संघर्ष का सामना करने से बचना चाहते हैं, अपितु कहीं कुछ मेरी ओर से गड़बड़ी नहीं है—ऐसा बहाना भी करते हैं। अति-दमदार विश्वास के साथ वे कहते हैं—वस्तुतः मैं पूरी तरह सही हूं। अपने-आप को सही साबित करने का उनका एकल-आलाप लंबे समय तक, बिना किसी विराम के चल सकता है। एक तरह से यह वैसी ही स्थिति हो जाती है, मानो वह उससे बात कर रहा है जो उसके सामने है ही नहीं। परिणामतः साथ में जीने वाले, रहने वाले सोचते हैं कि सारे अपराध, सारे दोष

हमारे ही सिर पर हैं। खुद तो पूरे दूध के धुले हैं। स्पष्ट है, परस्परता का शांतिपूर्ण वहन वहां हो नहीं सकता है।

कुछ लोग अपनी जवाबदेही की विमुखता को स्वीकार न करते हुए सारी समस्याओं की जड़ अपने साथी को ही महसूस करवाना चाहते हैं। उनकी अभिव्यक्ति कुछ इस लहजे में होती है कि सामने वाला अप्रत्यक्ष रूप में महसूस करे कि सारे दुख-दर्दों को उसी ने बुलाया है। 'जो भी हो रहा है, ठीक है, मेरे बारे में चिंता न करो'—निराशा-जनक अंदाज में लंबी आह के साथ ऐसे कथन कहकर वह अनायास सामने वाले के सिर पर सारी समस्याओं का बोझ डाल देता है।

कुछ लोग सामने वाले की स्थिति या भावनाओं से पूरी तरह नासमझ बनकर चिकित्सक की-सी भूमिका में चले जाते हैं, जहां हर चीज का विश्लेषण, खोजबीन की जाती है और क्या, क्यों, कैसे आदि के सारे विस्तार पूरी तरह से रख दिए जाते हैं। कोई भी सहयोगी अपने साथ वालों से इस तरह के व्यवहार की आशा नहीं करता। वहां तो अपेक्षा होती है कि बिना कहे, बिना बोले ही सारी भावनाएं समझ ली जाएं। और, यदि ऐसा नहीं होता है तो लगता है कि जो आपके मौन को नहीं समझ सकता, वह आपके शब्दों को भला क्या समझ पाएगा?

समझ सहजीवन की बुनियाद है। इसके अभाव में परस्परता निभ नहीं सकती।

कुछ लोग होते हैं जो अपने सहयोगियों के प्रति अपनापन प्रदर्शित कर उनके सारे रहस्य उगलवा लेते हैं। उनका रवैया लगभग इस रूप में रहता है—हमें एक-दूसरे के प्रति पूरी तरह ईमानदार और खुला हुआ होना चाहिए। अपने लोगों के बीच कोई परदा कैसा? अपनों से क्या छुपाना? इस तरह की मीठी-मीठी बातें कर दूसरे को पूरी तरह अपनी मुट्ठी में ले लेते हैं। ये सामने वाले को गलतफहमी में रखते हैं और अपने प्रति हर इच्छित व्यवहार की पूर्ति चाहते हैं। और, उसमें जब कुछ भी इधर-उधर होता है, वे अप्रत्याशित रूप से सामने वाले की गहनतम कोमल संवेदनाओं पर शब्दों का ऐसा प्रहार करते हैं कि व्यक्ति बुरी तरह तिलमिला जाता है। 'मुंह में राम, बगल में छुरी'—जैसे लोगों से कभी ईमानदार व्यवहार की आशा नहीं की जा सकती। अपनों से मिली घातक चोट व्यक्ति को व्यक्ति से सदा-सदा के लिए दूर कर देती है।

कुछ लोग किसी भी कार्य को करने के संदर्भ में स्पष्ट रूप से अपनी सहमति या असहमति नहीं जताएंगे और अपेक्षित-अनपेक्षित सौ तरह की हिदायतें भी सामने वाले के कानों में ठूंसते जाएंगे। इनकी आलोचनाएं सदा अस्पष्ट स्तर या परदे के पीछे से होती हैं और सामने वाला असमंजस की स्थिति में चला जाता है। सामने वाले को धर्मसंकट में डाल, इस तरह के लोग अपने-आप को एकबारगी बचा तो लेते हैं, लेकिन लंबे समय तक साथ निभा पाना इनके वश में नहीं।

कुछ लोग अपने-आप में ही अपने को कैद किए रहते हैं। अपनी नाराजगी या असहमति मुश्किल से ही वे शायद कभी अभिव्यक्त करते हैं, पर भीतर ही भीतर घुटन को दबाए रखते हैं। बड़े-बड़े तूफानों को भी वे जागरूकतापूर्वक निरपेक्ष या तटस्थ मनःस्थिति से गुजर जाने देते हैं। पर, आखिर कब तक! 'टाइम बम' की तरह कभी अचानक ही, बिना किसी पर्याप्त कारण के इनका संतुलन गड़बड़ा जाता है और भयंकर विस्फोट हो जाता है। छोटे-से निमित्त को पाकर ही इनके भीतर दबी हुई सारी शिकायतें साथी के सिर पर बरसती चली जाती हैं। 'किंकर्तव्यविमूढ़'-से बने ऐसे साथी की सोच-समझने की सामर्थ्य चुक-सी जाती है।

कुछ लोग अपनी कुंठा या क्रोध को सीधा कह देने के बजाए अपने साथी को सैकड़ों अन्य तरीकों से परेशान करते हैं। अपनी छोटी-छोटी हरकतों से वे सामने वाले को भड़कने को विवश करते हैं। जहां-तहां गंदगी फैला देना, चीजों को अस्त-व्यस्त कर देना, किसी भी काम को नजर-अंदाज कर भूलने का बहाना करना, बहुत ऊंची आवाज में टी.वी. या टेप रिकार्डर चालू कर देना, महत्त्वपूर्ण उत्सव, जन्मदिन आदि पर जान-बूझ कर विलंब से पहुंचना, अंगुली के नाखूनों से बिस्तर को, दीवारों को खरोंचते रहना आदि—इस तरह की हरकतों का कोई शुमार नहीं। इनके शस्त्र अनंत होते हैं जो सामने वाले को परेशान भी करते हैं और माहौल को भी तनावपूर्ण बना देते हैं।

कुछ लोग किसी भी गंभीर मसले पर विचार या व्यवस्था करने के बजाय उसका अवमूल्यन करने के आदी होते हैं। जब कोई गंभीरता से उनसे राय या विचार-विमर्श करना चाहेगा तो वे उनसे बात करने के बजाय दूसरों से मजाक या बच्चों से बात कर उनमें घुलमिल जाना चाहेंगे। किसी भी तरह व्यक्तिगत या गंभीर विषय पर बात करने को

वे कतई तैयार न होंगे। ऐसे में सामने वाले में चिड़चिड़ापन आ जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

कुछ संवेदनशील घटनाएं हर एक के जीवन में हो सकती हैं। अतीत का कोई व्यवहार, संबंध या ऐसी ही कोई नाजुक घटना, जिसे व्यक्ति अपने तक ही सीमित रखना चाहता है—व्यक्तित्व या कार्यक्षेत्र में उन्हें छुआ जाना किसी को भी पसंद नहीं हो सकता। पर, कुछ लोग होते हैं जिनके लिए सामने वाले की 'प्राइवेसी' का कोई अर्थ ही नहीं होता। खुलेआम मित्रों या सहकर्मियों के बीच वे इस तरह के तथ्यों को परोसते चले जाते हैं। फलतः आहत स्वाभिमान रचनात्मक कार्यक्षमता में तो भारी गिरावट लाता ही है, आपसी संबंध भी कभी हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं।

कुछ लोग सदा अनावश्यक बहसबाजी अपने हिस्से में रखते हैं। तर्क-वितर्क करते रहना इनका स्वभाव होता है। किसी भी विमर्शनीय मुद्दे को मूल बिंदु से हटाकर कहीं का कहीं ले जाने में ही ये अपनी बहादुरी समझते हैं। ये किसी भी एक बिंदु पर ध्यान केंद्रित नहीं होने देते। यदि वार्त्ता दो ही व्यक्तियों के बीच हो तो इस तरह के लोग अपने-आप को जल्दी-से-जल्दी किसी निर्णय तक पहुंचने में हिमायत दिखाएंगे। वास्तविक रूप से जब किसी निर्णय तक पहुंचने के समीप ही होंगे, तब वे कोई-न-कोई बहाना बना कर छोटी-सी बात पर वहां से खिसक जाएंगे। फलतः किसी भी निर्णायक स्थिति में पहुंच पाना संभव नहीं हो सकता। इस तरह के लोग किसी भी निर्णय की जवाबदारी भी स्वयं लेने के बजाय दूसरे पर डालने की कोशिश करते हैं।

कुछ लोग हर बात को कल पर टाल कर एक तरह से उदासीनता का मुखौटा पहने रहते हैं। भीतर में कोई गुस्सा या दुख है तो उसे सीधा कहकर हलका होने के बजाय ये अपने-आप में ही सिमटना चाहेंगे। ऐसी स्थिति में वर्तमान को नजरअंदाज कर देना उनकी आदत बन जाती है। ऐसे नीरस, बोझिल, उदासीन व्यवहार से वातावरण कब तक अप्रभावित रह सकता है? संबंधों की गाड़ी लड़खड़ा जाती है।

कुछ लोग होते हैं जो अपने साथियों की राहों को प्रशस्त बनाने के बजाय पथरीला बनाने में लगे रहते हैं। इस तरह के लोग अपने साथी के कथन या व्यवहार से गलतफहमी फैलाने में रस लेते हैं। दूसरे लोगों को भी वे इस बात के लिए उकसाते रहते हैं कि वे उनके साथी का उपहास बनाएं या हास्यास्पद तरीके से, बेहूदे ढंग से उस पर प्रहार करते रहें। समय पर साथी की सुरक्षा करने के बजाय ये खुद ही प्रतिपक्ष में चले जाते हैं और रिश्तों की मिठास कड़वाहट में बदल जाती है।

कुछ लोग अपने साथी को कुछ भी कहने का अवसर दिए बगैर अपनी ही हांकते चले जाते हैं। एक ही बात को दस बार दोहराने से भी इन्हें परहेज नहीं होता। सुनने वाले का धैर्य भी आखिर कब तक साथ दे पाएगा! जब सुनने वाले का संतुलन गड़बड़ा जाएगा, सारी स्थिति ही गड़बड़ा जाएगी और संभालने वाला कोई मिल पाना मुश्किल हो जाएगा।

कमी या कमजोरी तो किस में नहीं होती! पर विरल लोग ही होते होंगे जो सही समय पर, सही ढंग से और सही स्थान पर व्यक्ति को उसका एहसास करवा सकें। अन्यथा, प्रायः व्यक्ति सामने वाले को उसकी भूल का एहसास करवाने का साहस ही नहीं कर पाता। अनेक तरह की उचित-अनुचित आशंकाएं उसे घेरे रहती हैं। यह आसान नहीं कि विजातीय तत्त्वों को पचा सके, अनदेखा कर सके। ऐसे लोगों के लिए सच्चाई को कहना भी आसान नहीं होता और सहना भी संभव नहीं। सम्मुख मधुरता दर्शाते हुए पीठ-पीछे बुराई करते रहना भी आदत हो जाती है। दूसरों के सामने चर्चा करते हुए निंदा-रस का 'सुख' लूटते रहने वाले भी होते हैं। यत्र-तत्र व्यंग्य-बाण बरसा कर अपने आक्रोश का रेचन करते भी देखे जा सकते हैं। इस तरह दूरियां बढ़ती चली जाती हैं।

आकांक्षाएं और अरमान तो किसके पास नहीं होते? सपने तो सभी देखते हैं, पर सपनों में यथार्थ के रंग भर पाने का सौभाग्य किसी-किसी के हिस्से आता है। जहां सपनों को सच नहीं मिल पाता, आकांक्षाएं कुंठित हो जाती हैं, अरमान धरे रह जाते हैं—वहां निराशा और आक्रोश में चले जाना मानवीय दुर्बलता है। असफलता के कारण की सही समझ के अभाव में वे परिस्थितियों की प्रतिकूलता पर दोषारोपण करते हैं। सामने जो भी व्यक्ति आता है, उसी पर दोष मढ़ते जाना इनकी आदत में शामिल हो जाता है। समझाने की सौ कोशिशों के बाद भी इनका अज्ञान दूर नहीं होता। व्यक्ति जब यथार्थ से समझौता करना नहीं सीख पाता, तब साथ में रहने वाले भी परेशान हो जाते हैं। उनके साथ के बजाय, उनसे बच निकलने में ही वे अपनी समझदारी अनुभव करते हैं। समझौता ही जिंदगी है—इस

सच्चाई की यदि व्यक्ति उपेक्षा करेगा तो कोई आश्चर्य नहीं कि जिंदगी उसी की उपेक्षा करने लग जाए।

सुविधावाद में आकंठ डूबे लोगों का कभी संघर्षों से उपजी सफलता के सुख से परिचय नहीं हो पाता। 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम'—ही उनका जीवन-मंत्र रहता है। सामने वाले के सुख-दुख से पूरी तरह अनजान वे लोग अपने सुख के प्रति बड़े सजग होते हैं और उसमें कहीं, कभी, किसी व्यवधान को सहन नहीं कर पाते। जिंदगी का दूसरा नाम समझौता या सहिष्णुता है, पर अपने संदर्भ में इस सच्चाई से बिलकुल अनभिज्ञ लोग अपने ही रास्ते में भविष्य के लिए कांटे बो देते हैं।

स्वार्थों के दायरे में ही कुछ लोगों की दुनिया सिमटी रहती है। जब आंखों में स्वार्थ का अंजन लगा रहता है—व्यक्ति अपनत्व, अपना दायित्व या परस्परता की सारी सच्चाइयों को भुला सकता है। स्वार्थ की प्रबलता में अपकारी उपकार का मैदान जीत जाते हैं, अन्याय न्याय को अंगूठा दिखा देता है, जीवन और जगत पर मुस्कान रो पड़ती है। परस्परता तार-तार बिखर जाती है। व्यक्ति का अभिमान उसे अपनी गलती को दबाने या सही ठहराने के लिए भी प्रेरित करता है। दूसरे लोग क्या समझेंगे! मेरी इमेज खराब हो जाएगी—जैसी भावनाएं व्यक्ति को उकसाती हैं और व्यक्ति की भूलों या गलत आदतों का दरवाजा खुल जाता है। एक गलती को छिपाने के चक्कर में अनेक नई गलतियां कर डालता है। गलती को छिपाने या झुठलाने की मनोवृत्ति आपसी संबंधों और विश्वासों में भी दरारें पैदा कर देती है। एक गलती को दबाने या छिपाने के लिए व्यक्ति माया करता है, झूठ और फरेब का सहारा लेता है। इससे उसका मन भी कलुषित होता है, भावनाएं भी पवित्र नहीं रह सकतीं। कलुषित और अपवित्र भाव कभी स्वस्थ संबंधों की गारंटी नहीं बन सकते। माया और झूठ का आश्रय लेकर व्यक्ति एक बार अपने-आप को बचाने का प्रयास तो अवश्य कर लेता है, पर उससे संबंधों में अविश्वास की रेखाएं खचित हुए बिना नहीं रहतीं। संबंधों की मधुरता का आधार है—विश्वास, और विश्वास का आधार है—माया, झूठ और फरेब से मुक्त मनोवृत्ति।

जहां विश्वास होता है वहां कोई भी समस्या नहीं रहती। विश्वास बड़ी-से-बड़ी समस्या को हल कर देता है। समस्या वहां गहराती है जहां विश्वास की कमी होती है। जब विश्वास घटता है, तब व्यक्ति दूसरे के हर कथन में कुछ अन्यथा भाव देखता है। प्रायः इसी कारण से व्यक्ति दूसरों के द्वारा कही जाने वाली कटु बातों को सह नहीं पाता। तब उसे सही सलाह भी कांटे के समान चुभती है। यदि कहने वाले पर यह विश्वास हो कि जो-कुछ कहा जा रहा है, वह मेरे हित और कल्याण के लिए कह रहा है तो व्यक्ति उस बात का बुरा नहीं मानेगा। विश्वास की स्थिति में यदि एक तरफ से कुछ ज्यादा कड़ाई की जाती है तो दूसरा अधिक नम्र बनकर उभरने वाली समस्या को समाधान दे देता है। संबंधों की स्वस्थता के लिए सही समय की पहचान के साथ-साथ अपने अहं को झुकाना भी सीखना होता है। इससे विश्वास को बढ़ने का अवसर मिलेगा, संदेह के अंकुर फूट नहीं पाएंगे, संबंधों की मधुरता बनी रहेगी, स्वाभिमान भी आहत नहीं होगा।

विश्वास को बनाए रखने के लिए जरूरी है कि मायापूर्ण व्यवहार न करें। अपने व्यवहार को सहज और मृदु बनाएं। दूसरे व्यक्ति की भावनाओं का सम्मान करें, उसकी भावनाओं को समझने का प्रयत्न करें। चापलूसी या प्रयोजनहीन बातों से फुसलाने का प्रयत्न न करें, अपितु यथार्थ तथ्य को स्पष्ट करते हुए सामने वाले व्यक्ति को भी यह सोचने को मजबूर कर दें कि क्या दूरी पैदा करने वाला व्यवहार उपयुक्त है? क्या इससे विश्वास कायम रह सकता है? क्या अतिरंजना और उपेक्षा से विश्वास को धक्का नहीं लगता? यह भी ध्यान रखें कि क्या कहें और कब कहें, इसका विवेक होना सर्वदा अपेक्षित है।

संबंध भावात्मक होते हैं, किंतु उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। भाषा-विवेक टूटते हुए संबंधों को भी जोड़ देता है। किससे, कब, क्या, कितना कहें और कहां कितना सहें—यह विवेक साथ चलेगा तो विश्वास कभी टूटेगा नहीं और अविश्वास कभी पनपेगा नहीं। बिगड़ी बात को भी बनाया जा सकता है और संबंधों की ताजगी को कायम रखा जा सकता है। मधुर संबंधों को प्रगाढ़ बनाने के लिए यह जरूरी है कि आपस में एक-दूसरे को समझ लेने के बाद समय पर झुकना सीखें, पहल करना सीखें। परस्परता में जब विश्वास का सेतु निर्मित हो जाएगा तब कोई दुराव पैर नहीं जमा पाएगा।

अपनी ओर से पहल कीजिए, विश्वास की सुरक्षा और वृद्धि कीजिए, स्वस्थ संबंधों का रहस्य आपके हाथ में होगा। ❖

उन्होंने धर्म को अंधविश्वास, रूढ़िवाद और पूर्वाग्रह की कारा से मुक्त किया। दूसरी ओर भौतिकवाद की एकांगी धारा में बहते जन-मानस को अध्यात्मवाद की ओर मोड़ा। मानव-समाज की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना का जागरण उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। अध्यात्म-विहीन प्रगति को उन्होंने उचित नहीं समझा। भारतीय संविधान में प्रयुक्त धर्मनिरपेक्षता शब्द के स्थान पर उन्होंने संप्रदाय-निरपेक्षता के प्रयोग का सुझाव दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू से इस विषय पर उनकी गंभीर मंत्रणा और चर्चा हुई थी। गुरुदेव के आध्यात्मिक विचारों से पंडित नेहरू बहुत प्रभावित हुए और धर्म तथा अध्यात्म के प्रति उनके चिंतन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ।

विवेगे धम्ममाहिए

मुनि राकेशकुमार

विश्व पटल पर ऐसे विशिष्ट व्यक्तित्व हमेशा अवतरित होते रहे हैं, जिनके अनुपम अवदानों से पूरा मानव-समाज उपकृत होता है। उनके व्यक्तित्व की सौरभ क्षेत्र और काल की सीमा से अतीत होती है। अपने पुरुषार्थ और विचार-वैभव से वे समाज में अभिनव चेतना और जागृति का संचार करते हैं। ऐसे ही महापुरुषों की परंपरा में गणाधिपति श्री तुलसी 20वीं शताब्दी के शिखर पुरुष कहे जा सकते हैं। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उनके पुरुषार्थ की लेखनी से इतिहास के पृष्ठों पर अनेक अमिट रेखाओं का निर्माण हुआ। एक धर्माचार्य के रूप में उन्होंने जो पवित्र और प्रेरक रेखाएं अंकित कीं, वे युग-युग तक समाज का दिशा-दर्शन करती रहेंगी।

पावन जन्म जयंती
विनीत अभिवंदना

अणुव्रत अनुशास्ता गुरुदेवश्री तुलसी मानवता के मसीहा थे। उन्होंने अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से मानव-धर्म के व्यावहारिक स्वरूप का प्रतिपादन किया। संप्रदाय-विशेष के आचार्य होते हुए भी उन्होंने स्वयं को संप्रदायवाद की संकीर्ण धारा में आबद्ध नहीं किया। 'पहले इंसान इंसान, फिर हिंदू या मुसलमान'—यह प्रिय और प्रसिद्ध उद्घोष उनकी उदार दृष्टि का परिचायक है।

गुरुदेवश्री तुलसी का चिंतन पूर्वाग्रह से मुक्त था। जो मेरा है, वह सत्य है—इस चिंतन को उन्होंने उचित नहीं समझा। जो सत्य है, वह मेरा है—इस दर्शन पर उन्होंने बल दिया। उनका जीवन अनेकांतवाद की प्रयोगशाला था। आज अनेक स्तरों पर विरोधी विचारों के प्रति घृणा और असहिष्णुता दृष्टिगोचर होती है, पर गणाधिपति श्री तुलसी का चिंतन इसका सर्वथा अपवाद था। वे विरोधी विचारों के प्रति भी सदा उदार और सहिष्णु ही बने रहते थे। उनके सम्मुख अनेक बार विरोधी वातावरण और प्रसंग उपस्थित हुए। उस समय उनका मानसिक संतुलन न केवल देखने लायक होता था, हरएक के लिए उत्प्रेरक भी होता था।

उनको निकटता से जानने वाले सदा यह अनुभव किया करते कि वैचारिक भिन्नता के कारण यदि कोई विरोध भी होता, तो उसके सार्थक तत्त्व का वे प्रसन्नता से स्वागत करते थे। विक्रम संवत् 2006 में गुरुदेव का पावस प्रवास जयपुर था। वहां प्रखर विरोध का वातावरण उपस्थित हुआ। उसके मूल में सांप्रदायिक आग्रह और ईर्ष्या की भावना थी। उस समय गुरुदेव ने अपने प्रवचन में उस परिस्थिति पर विचार प्रकट करते हुए निम्नोक्त संस्कृत श्लोक का उच्चारण किया—

आकृष्टेन मतिमता, तत्त्वार्थान्वेवणे मतिः कार्या।
यदि सत्यं कः कोपः, स्यादनृतं किन्तु कोपेन।।

जिसका विरोध होता है, उसे यथार्थ का चिंतन करना चाहिए। यदि विरोध सही है तो वह किसी पर क्रोध क्यों करे, यदि सही नहीं है तो भी क्रोध क्यों करे। विरोध के अवसर जब भी आए, गुरुदेवश्री तुलसी द्वारा इस श्लोक का उच्चारण बहुत बार सुना गया। उनकी यथार्थवादिता, सहिष्णुता और सारग्रहीता की दृष्टि इसमें स्पष्ट परिलक्षित होती है।

धर्म मशाल की रोशनी के समान है, संप्रदाय उसे थामने वाले डंडे की माफिक है। धर्म-फल मधुर रस के समान है, संप्रदाय उसे धारण करने वाले छिलके और आवरण के समान है। धर्म और संप्रदाय के संबंध में गुरुदेवश्री तुलसी अपना चिंतन कई तरह के उदाहरणों से स्पष्ट करते थे। धर्म के विकास में संप्रदाय के महत्त्व को स्वीकारते हुए भी उनकी दृष्टि सदा 'आध्यात्मिक धर्म' पर केंद्रित रहती थी।

गुरुदेवश्री तुलसी धर्म को परमविज्ञान मानते थे। धर्म-सिद्धांतों की तर्कसंगत और वैज्ञानिक व्याख्या पर उन्होंने विशेष बल दिया। धर्म के क्षेत्र में व्याप्त अंधविश्वास और रूढ़िवाद के विरुद्ध उन्होंने असरदार क्रांति की। **विवेगे धम्ममाहिए**—भगवान महावीर की वाणी का यह आगम-सूत्र उन्हें बहुत प्रिय और अभीष्ट था। सत्य का साक्षात्कार करने वाले के सामने क्या, क्यों, कैसे, कब और कहां—ये पांच प्रश्न रहने चाहिए—यह बहुत-से विद्वानों का मत है। गुरुदेवश्री तुलसी ने इस सूत्र को बहुत उपयोगी माना और समाज में इसका विकास भी किया।

गुरुदेवश्री तुलसी का 75वां वर्ष योगक्षेम वर्ष के रूप में मनाया गया। जिसमें धार्मिक सिद्धांतों और आदर्शों की तर्कसंगत व वैज्ञानिक व्याख्याओं के लिए आधार-भूमि का निर्माण हुआ। आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व के विकास पर गंभीर चिंतन-मंथन हुआ। आगे चलकर इस धारा पर काम भी शुरू हुआ।

आज धर्म उपासना-केंद्रों में सीमित हो गया है। दैनिक जीवन से यह दूर हो रहा है। गुरुदेवश्री तुलसी ने अणुव्रत अभियान से धर्म को दैनिक जीवन के साथ जोड़ने का भगीरथ प्रयास किया। शिक्षा, व्यापार, राजनीति आदि, समाज के सभी क्षेत्रों में सत्य, अहिंसा और संयमप्रधान धर्म की प्रतिष्ठा होनी चाहिए—उनका यह चिंतन सबके लिए प्रेरणादायक है। उन्होंने आचरण और व्यवहार के द्वारा धार्मिक सिद्धांतों की परिभाषा और व्याख्या प्रस्तुत करने की दृष्टि दी। उनका मत था कि किसी भी तरह की शिक्षा का महत्त्व आचरण के द्वारा ही प्रमाणित हो सकता है। जैन धर्म के अनुसार किसी को शत्रु मानना भी भूल है। प्राणी-मात्र के प्रति मित्रता की अनुभूति करनी चाहिए—इन बातों को वास्तविकता में देखना जरूरी है।

एक धर्माचार्य के रूप में गुरुदेवश्री तुलसी ने अपने जीवन में दो प्रकार की भूमिकाओं का जागरूकता से निर्वाह किया। उन्होंने धर्म को अंधविश्वास, रूढ़िवाद और पूर्वाग्रह की कारा से मुक्त किया। दूसरी ओर भौतिकवाद की एकांगी धारा में बहते जन-मानस को अध्यात्मवाद की ओर मोड़ा। मानव-समाज की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक चेतना का जागरण उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। अध्यात्म-विहीन प्रगति को उन्होंने उचित नहीं समझा। भारतीय संविधान में प्रयुक्त धर्मनिरपेक्षता शब्द के स्थान पर उन्होंने संप्रदाय-निरपेक्षता के प्रयोग का सुझाव दिया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू से इस विषय पर उनकी गंभीर मंत्रणा और चर्चा हुई थी। गुरुदेव के आध्यात्मिक विचारों से पंडित नेहरू बहुत प्रभावित हुए और धर्म तथा अध्यात्म के प्रति उनके चिंतन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ।

धार्मिक और आध्यात्मिक व्यक्ति समाज के प्रति कर्तव्यविमुख हो जाता है—अपने जीवन और दर्शन से इस भ्रांत धारणा का उन्होंने निराकरण किया। अध्यात्म और व्यवहार के संबंधों पर उन्होंने स्पष्ट मार्गदर्शन किया। जीवन के आंतरिक और व्यावहारिक पक्षों में उन्होंने संतुलन स्थापित किया। गुरुदेवश्री तुलसी ने धर्म और जाति के नाम पर व्याप्त भेदभावों और विषमताओं के उन्मूलन हेतु भी

शेष पृष्ठ 47 पर

सुनहरे भविष्य की कल्पना करने वाले को न सिर्फ अतीत के व्यामोह को छोड़ना होगा, बल्कि ऐसे दोस्तों, परिजनों और हितचिंतकों से भी दूरी बनानी होगी, जो सदैव अतीत की पोथी खोले बैठे रहते हैं। केवल अतीत के गीत विकास और सफलता, दोनों में बाधक बनते हैं। वर्तमान को पकड़ने का प्रयास करना होगा, जो प्रवहमान है और जिससे भविष्य में बहुत-कुछ किया जा सकता है। यही सकारात्मक सोच सुंदर भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

सकारात्मक चिंतन : सफलता की सीढ़ी

मुनि रमेशकुमार

जीवन से संबद्ध क्रियाओं में एक महत्त्वपूर्ण और उपयोगी क्रिया है—स्वस्थ चिंतन। स्वस्थ चिंतन से रहित जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जिस व्यक्ति के जीवन में स्वस्थ चिंतन का अभाव होता है, उसका सारा जीवन ही नीरस बन जाता है। सफलता और विफलता के पीछे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने वाला प्रमुख तत्त्व चिंतन ही होता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि मन और मस्तिष्क में उभरने वाली चिंतन की धाराओं को सफलता के साथ कैसे रूपांतरित करें!

सकारात्मक चिंतन जहां हमारा सच्चा मित्र है, वहीं नकारात्मक चिंतन दुश्मन। जीवन की समग्र समस्याओं का समाधान चिंतन के द्वारा ही खोजा जाता है। वे समस्याएं चाहे व्यक्तिगत जीवन से संबंधित हों, पारिवारिक जीवन से हों या फिर आर्थिक। इन समस्याओं से संघर्ष कर रहे व्यक्ति का यदि नकारात्मक चिंतन होगा, तो वह भीतर-ही-भीतर टूटता रहेगा और परिणामस्वरूप वह आत्म-हत्या या पर-हत्या जैसा कृत्य भी कर बैठेगा। सकारात्मक चिंतन वाला व्यक्ति इन्हीं परिस्थितियों में धैर्य, शांति और सह-सद्भावना से समस्याओं को समाहित कर लेगा। समस्याओं के साथ मैत्री स्थापित करता हुआ ऐसा व्यक्ति जीवन को मधुरता से भर लेगा।

सकारात्मक चिंतन के माध्यम से इच्छाशक्ति अर्थात् 'विल-पावर' का विकास होता है। तीव्र इच्छाशक्ति से भी व्यक्ति आगे बढ़ता है और अपने कार्य को पूर्णता तक पहुंचा देता है। किसी कार्य के लिए उसे कितना भी संघर्ष करना पड़े, वह कार्य कितना भी मुश्किल क्यों न हो, संकल्प और इच्छाशक्ति से वह उसमें सफल हो सकता है। नकारात्मक चिंतन वाला व्यक्ति परिस्थितियां विपरीत होते ही सोचेगा कि इन परिस्थितियों में कार्य नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति अपने संकल्प से शिथिल हो जाते हैं, वे कभी भी सफल नहीं हो सकते। अतः सफलता के लिए तीव्र इच्छाशक्ति, सकारात्मक और स्वस्थ चिंतन का योग आवश्यक है।

नकारात्मक चिंतन से हमारे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर भी असर होता है। स्वभाव में आवेग, आवेश, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा और उदासीनता की वृद्धि होती है। एक के बाद एक कार्य बिगड़ सकते हैं और उस स्थिति में कोई सहायक भी नहीं होता। असहाय बना हुआ व्यक्ति बद

से बदतर स्थिति में चला जाता है। इस स्थिति का हेतु नकारात्मक चिंतन ही होता है।

आज का शिक्षित युवक अपनी शिक्षा, कार्यक्षेत्र और 'कैरियर' के विषय में सजग है। वह अपने 'कैरियर' को संवारना भी चाहता है। कार्यक्षेत्र को भी सफलता के रंग से भर देना चाहता है। जब सफलता मिलती है तो वह अपने-आप को आनंदित महसूस करता है। उसमें नई ऊर्जा, नई स्फूर्ति का संचार होने लगता है। आनंद के इन्हीं क्षणों को वह सकारात्मक चिंतन के परिणाम के नजरिए से देखेगा।

सफलता के लिए वर्तमान समय का मूल्यांकन भी करना होगा। अतीत के गौरवगान करने का व्यामोह छोड़ना होगा। अतीत से मुक्त वर्तमान में हमें कुछ कर दिखाना होगा। फ्रांस में एक बार सैनिकों की भर्ती हो रही थी। दो युवक सेना में भर्ती होने के लिए पहुंचे। अधिकारी ने साक्षात्कार में एक युवक से उसका परिचय पूछा। उस युवक ने अपना परिचय देते हुए कहा—मेरे दादाजी महान योद्धा थे, मेरे पिताजी को बहादुरी के कई तमगे मिले। मेरे चाचा और मामा ने भी युद्ध में बलिदान दिया। इस तरह अपने परिवार का लंबा-चौड़ा परिचय दिया। उसके पश्चात् अधिकारी ने दूसरे युवक से उसका परिचय पूछा। दूसरे युवक ने सहजता से कहा—'मैं ही मेरा परिचय हूं। खानदान की बहादुरी में मैं विश्वास नहीं करता।'

अफसर ने दोनों युवकों को सेना में भर्ती किया। बहादुरों के खानदान वाले उस युवक को कोई नहीं जानता है। मगर उस दूसरे युवक को इतिहास बहादुरी की मिसाल के रूप में आज भी याद करता है। वह दूसरा युवक महान सैन्य नायक नेपोलियन था। जीवन का लक्ष्य सफलता है, पर वह केवल अतीत के गौरवगान से नहीं मिलेगी। वर्तमान में कुछ करके दिखाना होगा। इस प्रेरक उक्ति को याद रखें—'अतीतरागी सिर्फ दो ही लोग होते हैं, एक तो वे, जो मौजूदा परिस्थितियों से जी चुराते हैं और दूसरे, असफल लोग'। पहले वाले की असफलता अनिवार्य परिणति है। सफल होने के लिए महज स्वप्नजीवी होना ही जरूरी नहीं है, बल्कि स्वप्न को साकार रूप से परिणत करने के लिए सतत प्रयास भी जरूरी होता है।

सुनहरे भविष्य की कल्पना करने वाले को न सिर्फ अतीत के व्यामोह को छोड़ना होगा, बल्कि ऐसे दोस्तों, परिजनों और हितचिंतकों से भी दूरी बनानी होगी, जो सदैव अतीत की पोथी खोले बैठे रहते हैं। केवल अतीत के गीत विकास और सफलता, दोनों में बाधक बनते हैं। वर्तमान को पकड़ने का प्रयास करना होगा, जो प्रवहमान है और जिससे भविष्य में बहुत-कुछ किया जा सकता है। यही सकारात्मक सोच सुंदर भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा।

देखने में आता है कि असफल होने पर युवा-मानस जल्दी ही संयम, धैर्य और विवेक को खो देता है। उदासीनता के उन क्षणों में इन पंक्तियों को बार-बार दोहराएं—'कल का दिन किसने देखा, आज के दिन को खोएं क्यों? जिन घड़ियों में हंस सकते हैं, उन घड़ियों में रोएं क्यों?' मुझे सफल होना है, मैं अपनी कमजोरियों को दूर करने का पुनः प्रयास करूंगा। निरंतर ऐसे प्रयास करते रहने से सफल भविष्य का सर्जन कर सकते हैं।

जीवन के संघर्ष सुखद और दुखद, दोनों प्रकार के होते हैं। यह स्वयं पर निर्भर करता है कि वह उनसे मुकाबला कैसे करता है। हम इतिहास को पढ़ें तो यह पढ़कर हमें आश्चर्य होगा कि विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन में भी असफलता के दौर आए हैं। उनकी असफलता के पीछे सफलता की कहानी बोल रही है। टॉम वैटसन सीनियर ने कहा है—'अगर आप सफल होना चाहते हैं तो असफलता की दर दुगुनी कर दीजिए।' सफल व्यक्तियों की असफलता को देखने वाले बहुत कम होते हैं। सिक्के के एक पहलू पर ही हमारी नजर रहती है, दूसरे पहलू को हम नजरअंदाज कर देते हैं।

एक महान और सुप्रसिद्ध व्यक्ति के जीवनक्रम को हम गहराई से देखें। वह व्यक्ति 21 वर्ष की उम्र में व्यापार में असफल होता है। 22वें वर्ष में वह एक चुनाव में हारा। 24वें वर्ष में फिर व्यापार में असफल हुआ। 26वें वर्ष में उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो जाता है। 27वें वर्ष में वह मानसिक संतुलन खो देता है। 34वें वर्ष में फिर चुनाव लड़ता है, फिर हार जाता है। 45वें वर्ष में वह सीनेट का चुनाव हारता है। 47वें वर्ष में उपराष्ट्रपति बनता-बनता नाकामयाब रहा। 49वें वर्ष में सीनेट का फिर चुनाव हार जाता है। अंततः 52वें वर्ष में वह व्यक्ति अमेरिका का राष्ट्रपति बन जाता है। यह व्यक्ति और कोई नहीं—अब्राहम लिंकन था। क्या हम उसे असफल कहेंगे? लिंकन को हम असफल नहीं कह सकते। हार या असफलता उनके लिए एक पल की बाधा थी। वे फिर प्रयास में लग गए। आखिरकार वह दिन भी आया, जब वे अमेरिका के शिखर-पुरुष बनने में सफलता प्राप्त कर सके। सफल व्यक्तियों के जीवन से प्रेरणा लें। वे जब भी असफल हुए,

तब उन्होंने आगे बढ़ने के लिए क्या उपाय किए? शिखर तक पहुंचने में बाधक तत्त्वों को कैसे दूर किया? फिर यह सोचें कि मैं भी उन उपायों को अपनाकर सफल हो सकता हूं।

सफलता के लिए समग्रता के साथ चिंतन करने से सम्यक् परिणाम हस्तगत हो सकते हैं। समग्र चिंतन के अभाव में प्रायः परिणाम संतोषप्रद नहीं होते। इस दृष्टि से हमारी सोच वैज्ञानिक भी हो, आध्यात्मिक भी हो और व्यावहारिक भी हो। तभी समग्रता से चिंतन हो सकता है। केवल एक कोण को पकड़ने मात्र से समस्या का समुचित समाधान नहीं हो सकता। समुचित समाधान न होने के कारण कई बार नई समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिसका शायद हमारे पास समाधान न हो।

चिंतन के परिणामों को व्याख्यायित करते हुए—'कैसे सोचें'—पुस्तक में आचार्यश्री महाप्रज्ञजी बताते हैं कि 'हम समग्रता के दृष्टिकोण से चिंतन करें। उसके तीन पहलू हैं—परिणाम, प्रवृत्ति और वृत्ति। ऊपर से चलें तो यह क्रम बनता है। नीचे से चलें तो कार्य-कारण की शृंखला में वृत्ति मूल कारण है। प्रवृत्ति उसका कार्य और परिणाम प्रवृत्ति का कार्य है—ये कार्य-कारण की शृंखला में तीनों जुड़ते हैं। तीनों सच्चाइयों का अनुभव करें। सही चिंतन और सही निर्णय के आधार पर सफल होंगे।' अतः स्वस्थ और सकारात्मक चिंतन से जीवन सफल बनता है। उसका मूल्यांकन करके हम उसे हस्तगत करने का प्रयास करें। ❖

सत्याग्रह : एक शास्त्र; एक शस्त्र

पृष्ठ 20 का शेष

धर्म-वृत्ति न भी जागे, बल्कि केवल कृपा-वृत्ति जागे, अथवा 'कलह का मुंह काला' की वृत्ति से वह सत्याग्रही की 'जिद' पूरी करे, ऐसा हो सकता है। पर इसे सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता। व्यक्ति के विरुद्ध किए जाने वाले सत्याग्रह में यदि उस व्यक्ति के साथ पहले से कोई निजी या मित्रता का संबंध न हो, तो उपवास का सहारा लेना उचित नहीं।

साधारणतः यह कहा जा सकता है कि उपवास के रूप में किया जाने वाला सत्याग्रह कुटुंबियों, निजी मित्रों, गुरु, शिष्य, गुरु-भाई आदि निजी रूप से परिचित मंडली के विरुद्ध ही किया जा सकता है। इसी प्रकार जो समाज अपना ही हो और पहले अपने द्वारा की गई सेवा के कारण सेवक समाज का आदरपात्र बना हो, तो साधारणतः यह कहा जा सकता है कि ऐसे समाज के अन्याय के विरुद्ध उपवास के रूप में सत्याग्रह किया जा सकता है।

व्यक्ति के विरुद्ध होने वाले सत्याग्रह में व्यक्तिगत अन्याय के लिए तो कभी उपवास करना ही नहीं चाहिए। यदि वह व्यक्ति अपने साथ मित्रता का दावा रखता हो और किसी तीसरे व्यक्ति के प्रति अथवा स्वयं के प्रति किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार करता हो, तो दूसरे उपायों का प्रयोग करने के बाद उपवास किया जा सकता है।

तंत्र के विरुद्ध किए जाने वाले सत्याग्रह में उपवास अंतिम उपाय है। जब सत्याग्रही पराधीन स्थिति में हो और सत्याग्रह के दूसरे कोई भी उपाय उसके लिए संभव न हों और तंत्र द्वारा होने वाला अधर्म उसे इतना खटकने वाला हो कि उस अधर्म अथवा अन्याय को सहन करते हुए जीना उसके लिए तो केवल सत्त्वहीन बनकर जीने-जैसा हो जाए, तो प्राण छोड़ने की तैयारी से ही वह अनशन शुरू करे।

ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है, इसका निर्णय करने में वह अपनी भावना को अतितीव्र न होने दे; बल्कि तंत्र चलाने वाले व्यवस्थापकों की कठिनाइयों का और जिन पुरानी आदतों में वे फंसे हुए हैं, उनका भी वह उचित विचार करे और इसके लिए आवश्यक रियायत भी दे। साथ ही, वह इस बात का भी विचार करे कि कौनसा अन्याय अनिवार्य और आकस्मिक है, कौनसा जान-बूझकर किया गया है और कौनसा अन्यायपूर्ण नियमों के कारण हो रहा है। इनमें भी वह व्यक्तिगत अन्यायों को कड़े दिल से सह लेगा। क्योंकि जब मनुष्य जान-बूझकर अन्याय सहन करता है, तो उससे उसकी सत्त्वहानि नहीं होती; किंतु जब दीनता, भय अथवा केवल जान बचाने के मोह से वह अन्याय सहता है, तो उससे उसकी सत्त्वहानि होती है।

एक ओर सत्याग्रह के रूप में उपवास शुरू करना और दूसरी ओर अपनी मांग मंजूर कराने के लिए विरोधी के अधिकारियों द्वारा उस पर दबाव डलवाने का प्रयत्न करना उचित नहीं। ऐसा उपवास सत्याग्रह नहीं कहा जा सकता।

अपने अथवा मित्र के अथवा साथियों के दोषों के प्रायश्चित्त के रूप में अथवा मित्र या साथियों को उनकी किसी शुद्ध प्रतिज्ञा पर दृढ़ रखने के लिए उपवास करना, इस प्रकरण के अर्थ में सत्याग्रह नहीं, बल्कि तपश्चर्या है। इस प्रकार विवेकपूर्वक की जाने वाली तपश्चर्या का जीवन में स्थान है; किंतु यहां उसकी चर्चा प्रस्तुत नहीं। ❖

मैं ऐसा नहीं समझती नीहार बाबू! इस प्रकार की एकांतिकता को झेलने के लिए व्यक्ति के पास पूरे जीवन की स्मृति-संपन्नता चाहिए। बिना उसके इतनी चीजों वाली शांति कोई सहन कर सकता है? जब तक व्यक्ति के पास वर्तमान होगा, वह यहां एक दिन भी नहीं रहना चाहेगा। क्या आप मुझे वर्तमान समझते हैं? यदि हूं भी तो ऐसा कि जिसे आसानी से अतीत समझा जा सकता है। मेरे लिए वर्तमान का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि मैंने अब भोगना बंद कर दिया है। जब हम भोगेंगे नहीं, तब नई स्मृति नहीं होगी। केवल अतीत, ऐसा अतीत, जिसे हमने अपना क्या नहीं सौंपा?

स्मृतिजीव्या

श्रीनरेश मेहता

बरामदे में अब काफी अंधेरा घिर आया था। लेंप की रोशनी सूरजमुखी का फूल हो रही थी। तेज ठंडी हवा के झोंकों के साथ हल्की फुहार का आभास था। वातावरण कंपा देने की सीमा तक ठंडा हो गया था। भीतर के कमरों में नौकरों की हलकी आहटें थीं। मुझे लगा कि अब चलना चाहिए।

उठते हुए बोला,

—अच्छा तो आज्ञा दें। मेरे इस प्रकार आने से यदि आपको कोई असुविधा हुई हो तो क्षमा करें।

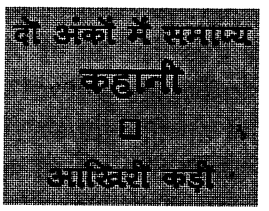

—बिलकुल नहीं नीहार बाबू! आप पूरी तरह आश्वस्त रहें। द ओल्ड एज इज नेवर डिस्टर्ब्ड। आप आएंगे तो मुझे प्रसन्नता ही होगी। यूवर फ्रेंड इज ए व्हेरी सिंसियर परसन।

वृष्टि की फुहार सिर पर लिए मैं लौट आया।

उस दिन के बाद से मैं क्रमशः उनके निकट होता गया। कभी-कभी डॉक्टर भी होते। श्रीमती डेविस के पास, लगता कि अतीत और अनुभव, दोनों की कोई कमी नहीं है। चूंकि उनकी बातों के पीछे इतनी निष्ठा होती थी कि सादे-से वर्णन का भी प्रभाव पड़ता था। चित्रों वाली कहानी की किताबों की तरह इस प्रकार के व्यक्ति होते हैं। श्रीमती डेविस को देखकर पहली बार लगा कि वृद्ध-सौंदर्य में भी वही मोहकता संभव है, जो किसी युवामुख में प्रायः होती है।

श्रीमती डेविस की वह कॉटेज पांच कमरों की थी। उस दिन जिन खिड़कियों से मैंने प्रकाश देखा था, वह उनका संगीत-कक्ष था। पियानो और ग्रामोफोन के साथ सितार देखकर मुझे आश्चर्य हुआ।

—मिसेस डेविस! पता नहीं आप कितने तरह के आश्चर्य दे सकती हैं।

मेरी इस बात पर वह इतना कम चौंकी कि उनके आत्मसंयम के प्रति आदर ही हुआ। वह अपनी परिचित

मुस्कान के साथ बोलीं,

—जिस दिन मनुष्य आश्चर्य करना छोड़ देता है, उसी दिन से वह वृद्ध होने लगता है। हाउ गुड इट इज टु बी ओल्ड।... आप सितार देखकर आश्चर्य कर रहे हैं, है न? लेकिन मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा यदि आप मुझे बजाने के लिए भी कहें।

और वह सुनहरी अक्षरों की भांति चमकते हुए हंस उठीं।

—यदि आप बजा सकें तो...

—यही 'तो' ही तो सब-कुछ है नीहार बाबू।... असल में मिस्टर डेविस को दुनिया-भर की चीजें जमा करने का शौक पागलपन की सीमा तक था। थोड़ा-बहुत संगीत जानते-बूझते थे। कुछ ध्यान देते तो एक स्तर तक वादक भी हो सकते थे।

पियानो पर काले पत्थर का एक बस्ट रखा था। स्पष्ट था कि वह किसी प्रसिद्ध संगीतज्ञ का ही होगा।

गत आठ दिनों की बूंदाबांदी, धुंध और कुहरे के बाद आज के इस अपराह्न में सूर्य पूरी दमकता के साथ खिल आया था। ठंडी, सोने की धूप चीड़ व वनों में बिछल कर कितनी सम्मोहक लग रही थी, यह बिना देखे अनुभव नहीं हो सकता। इतने दिनों के परिचय के बाद श्रीमती डेविस आज अपनी कॉटेज दिखा रही थीं। कॉटेज देखकर ही मेरी समझ में आया कि श्रीमती डेविस किस प्रकार व्यस्त रहती हैं।

सवेरे वह चैपल और कब्र पर जाती हैं। शाम चाय पीते हुए सूर्यास्त देखती रहती हैं। एक प्रकार से वह उनके माला फेरने का समय ही है। रात में खाना खाने के पूर्व वह कुछ देर संगीत सुनती हैं तथा भोजनोपरांत कुछ लिखना-पढ़ना करके सोने चली जाती हैं। बाकी के सारे दिन वह नौकरों से तथा स्वयं भी एक-एक चीज की आवश्यक झड़ाई-पुंछाई करवाती-करती रहती हैं। तांबे और पीतल की चीजों को यदि समय पर पालिश न किया जाए तो वे किस प्रकार काली पड़ने लगती हैं। बीच वाला बड़ा कमरा अच्छा-खासा अजायबघर है। कई प्रकार के जलपोतों के मॉडल, आस्ट्रिया के शीशे के फानूस तथा बिल्लौरी कांच के बर्तन, फारस के कालीन, आस्ट्रेलिया के आदिवासियों का बूमरेंग, रेडइंडियनों की पंखों वाली भूषा, किसी अंग्रेज सेनापति की बोअर युद्ध की लाल युद्धभूषा जैसी अनेक चीजों से वह कमरा भरा पड़ा था। चिली के जंगलों में पाई जाने वाली मिट्टी की मूर्तियों से लेकर मिश्र के नीले-आसमानी प्याले तक वहां मौजूद थे। एक दीवार पर संसार का मानचित्र टंगा था, जिस पर लाल-पीली छोटी-छोटी झंडियों से संसार-भर की धरती चिह्नित थी। कोने में अच्छा-खासा एक बड़ा ग्लोब था। स्पष्ट था कि स्वर्गीय डेविस महोदय यात्राओं के ही शौकीन नहीं थे, वरन कुछ-कुछ पुरातत्त्व में भी गति थी।

—मिस्टर डेविस तो खासे साहसिक व्यक्ति थे।

—ही वाज वाइडली ट्रेवल्ड पर्सन।

—शायद अपने काम से घूमते रहे होंगे।

वह थोड़ा-सा हंसी, बोलीं,

—जीवन-भर तो वे जलसेना में थे। यह देखिए, उन्हें 'विक्टोरिया-क्रास' भी मिला था।

'विक्टोरिया-क्रास' का नाम तो मैंने बहुत सुन रखा था, पर कभी देखने का सुअवसर नहीं मिला था। मखमल की एक मंजूषा में वह काला क्रास रखा हुआ था। क्रास देखकर मुझे बड़ी निराशा हुई। कल्पना में जो चित्र और चमक इस क्रास के साथ थी, वह वास्तविक क्रास को देखकर काफूर हो गई। अब मेरी समझ में डेविस परिवार की इस संपन्नता तथा वस्तु-बहुलता का सारा रहस्य स्पष्ट हो गया था! अंग्रेजी में जिसे 'बूटी' कहते हैं, यह वैभव उसी 'बूटी' का प्रसाद और किसी सीमा तक प्रासाद भी कहा जा सकता था।

हम लोग डेविस परिवार की स्टडी में थे। तभी चाय की सूचना दी गई थी। श्रीमती डेविस ने नौकर से स्टडी की चारों खिड़कियां खोल देने के लिए कहा। कमरा धूप की ओर तो नहीं था, पर प्रकाश खासा हो गया था। स्टडी के लिए जो कमरा चुना गया था, वह काफी उपयुक्त था, इसलिए कि पहाड़ यहां फट गया था, फलतः लंबी ढलान आ गई थी। सुदूर तक दृश्य, चोटियां, आकाश सब ढंक गया था। पुस्तकों का चयन उसी प्रकार का था—जैसा कि जहाजी कप्तानों का हो सकता था। इतिहास तथा साहित्य की भी कुछ पुस्तकें थीं। बाइबिल के सभी तरह के संस्करणों से पूरी एक आलमारी भरी हुई थी। पतली-पतली टांगों तथा पीठ वाली एक जनानी कुर्सी तथा तदनुरूप टेबल से स्पष्ट था कि श्रीमती डेविस यहां बैठकर अपना लिखना-पढ़ना करती होंगी। इसी कमरे से सटा शयन-कक्ष था। स्टडी में एकमात्र तैलचित्र था, जिसे पहचानने में मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि चित्र एक जहाजी कप्तान का था। मैं किंचित मुस्कराते हुए बोला,

—अद्भुत रूप से आकर्षक व्यक्ति रहे होंगे मिस्टर डेविस!

—यंग एज इज आलवेज लाइक दैट।

जिस ठंडी उष्णता से उन्होंने मुझे उत्तर दिया, उसे मैं किस प्रकार का भाव कहूं, नहीं समझ पा रहा हूं। नौकर एक-एक प्याला चाय दे गया। उस कमरे में मात्र वही जनानी कुर्सी थी। श्रीमती डेविस की झिझक मैं समझ गया कि वह बैठना चाहती हैं, पर कैसे बैठें? वह दूसरी कुर्सी मंगवाने जा ही रही थीं कि मैंने उन्हें टोका,

—आप बिना कोई यूरोपीय औपचारिकता बरते, बैठें।

और मैं कप लेकर खिड़की की चौखट पर टिकते हुए चाय-पीने लगा। मैंने सदा लोगों की आंखों को ध्यान से देखा होगा। व्यक्ति, केवल आंख होता है। यदि आप किसी की आंखें समझ ले जाएं तो आप जैसे उसकी नब्ज पर हाथ धर देते हैं। संवेदनशील व्यक्ति की आंखें पीपलपत्र की भांति सजीव, निर्दोषपूर्ण तथा देवत्वमय होती हैं। श्रीमती डेविस की आंखों की चमक वार्निस की न होकर पत्तों की-सी थी। अपनी जनानी कुर्सी पर बैठे हुए वह ऐसी लग रही थीं, जैसे उन्हें मात्र एक सुनहरी फ्रेम की ही अब प्रतीक्षा थी, शेष वह कर चुकी थीं। उस कॉटेज में जिस प्रकार की शांति थी, वह मुझे काम्यवस्तु-सी लग रही थी। मैं बोला,

—यदि ऐसे शांत स्थान में रहने को मिले तो मैं किसी अन्य चीज की कामना ही नहीं कर सकता।

मेरी बात का सहसा कोई उत्तर नहीं मिला। कमरे में इतनी निस्तब्धता सहसा आ गई थी कि या तो कपों की आवाज थी या फिर पेड़-तनों पर दौड़ती गिलहरियों की आवाज आ रही थी। मैं उन्हें बराबर देख रहा हूं, इसकी प्रतीति उन्हें थी। वह बोलीं,

—मैं ऐसा नहीं समझती नीहार बाबू! इस प्रकार की एकांतिकता को झेलने के लिए व्यक्ति के पास पूरे जीवन की स्मृति-संपन्नता चाहिए। बिना उसके इतनी चीजों वाली शांति कोई सहन कर सकता है? जब तक व्यक्ति के पास वर्तमान होगा, वह यहां एक दिन भी नहीं रहना चाहेगा। क्या आप मुझे वर्तमान समझते हैं? यदि हूं भी तो ऐसा कि जिसे आसानी से अतीत समझा जा सकता है। मेरे लिए वर्तमान का कोई अर्थ नहीं, क्योंकि मैंने अब भोगना बंद कर दिया है। जब हम भोगेंगे नहीं, तब नई स्मृति नहीं होगी। केवल अतीत, ऐसा अतीत, जिसे हमने अपना क्या नहीं सौंपा?...असल में नीहार बाबू! मैं अपने बचपन में ही वृद्ध होने के सपने देखती थी। वृद्धापकाल का ठंडापन मुझे हमेशा आकर्षित करता था। जीवन-भर वृद्ध होने की ही प्रतीक्षा करती रही। और जिस दिन पहली बार अपने सिर पर धवलता दिखी, मुझे कितनी अपार खुशी हुई थी कि क्या बताऊं! अनेक दिनों समुद्र में भटकने वाली नौका को जब सुदूर क्षितिज में किसी भूमि का आभास मिलता है और तब मल्लाह जिस उत्साह से, तेजी से उसकी ओर बढ़ते हैं, लगभग उतनी ही तेजी से मैं भी वृद्ध होने लगी। प्रायः लोग वृद्ध होने से डरते हैं। जिसके पास स्मृतियां नहीं होतीं, वही वृद्ध होने से घबराता है। —तो उस दिन के बाद से मैंने अपने जीवन की किताब में आगे पन्ने जोड़ने बंद कर दिए। उस दिन तक के सारे पृष्ठों को सुनहरी अक्षरों वाली बाइबिल की भांति सहेजकर रख लिया। यदि व्यक्ति के पास स्मृतियां न हों, इस प्रकार के सूने घर की अपनी ही पदाहटों से समय-कुसमय भय लगने लगता है। लैम्प हाथ में लिये जब एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना होता है, तब अपनी ही छाया दीवारें चढ़ती-उतरती न जाने कैसी-कैसी शक्लों में आपके आगे-पीछे दौड़ती चलती है—तब रोम-रोम कांप उठता है नीहार बाबू! ...आधी रातों में जब बर्फीली हवाएं दरवाजों, खिड़कियों पर अनाम अभ्यागतों की भांति दस्तकें देती हैं या कोई दरवाजा चरमराने लगता है, तब आपका खून जमने लगता है... नीहार बाबू! आपने मिस्टर डेविस की कब्र देखी है न? आधी रात में प्रायः वहां से कराहने की आवाज आती है और मैं मोमबत्ती लिए वहां जाती हूं, क्योंकि मुझे लगता है कि या तो पत्तियों का दबाव मिस्टर डेविस को हो रहा होगा अथवा आंखों या मुंह पर पत्तियां आ गई होंगी, जिसके कारण उन्हें उलझन हो रही होगी। और सच ही उनके मुंह की तरफ काफी पत्तियां गिरी हुई होती हैं! आज भी उनकी दवाइयां, कपड़ों का धुलवाया जाना, कफ और कलर का कड़ापन, बटनों की चमक, जूतों की पालिश—सब का बराबर ध्यान रखना होता है। कई बार उनकी खांसी तक सुनाई पड़ती है। ...प्रत्येक दिन, हम पूरा जीवन जीते हैं नीहार बाबू! ...यदि ऐसा जीवन न होगा तो यहां क्या जीया जा सकता है? और क्या जीयेंगे...ये चीजें, यह स्थान...? ...प्रत्येक का जीवन, आयु, वृद्धताकाल, स्मृतियां, प्रियजन नितांत पृथक होते हैं नीहार बाबू! कोई किसी से बदल नहीं सकता। इस अनचले वन में प्रत्येक को अपनी पगडंडी घासों और पत्तों में से खोजनी ही होती है।'

शेष पृष्ठ 58 पर

रमेशचन्द्र शाह की कविताएं

•

विनायक

बहुत भटका
देस और बिदेस
पर, अब
गांठ कर खुद पर सवारी
आप ही अपना पितर बन
चार धामों-सा
निरंतर
नप रहा हूं

लौ लगी सचमुच
तभी तो
पड़े हैं पीछे पवन उनचास मेरे
पर, उन्हें क्या पता
उनकी आड़ लेकर
मैं उन्हीं को मुंह चिढ़ाता
कंप रहा हूं

साक्षी हों देव, मानव
साक्षी हों लाख चौरासी गगन-जल-थल
निवासी
मैं—किया जो नहीं जीवन-भर
वही कर
अब रहा हूं

सांझ है
मेरे लिए अब
एक नन्ही आग का
तप
राग का तप।

सांझ में ही
दोपहर-सा
खप रहा हूं।

•

संबंध

खोज-खोज कर
उसके भीतर के सपाट में
अपना शरणस्थल
मैं
हार गया हूं

कितनी बार उघाड़ सामने उसके
अपना मर्मस्थल
मैं, सचमुच
हार गया हूं

मेरी हार हार है
पर
उसकी भी
नहीं विजय है

मैं मनुष्य हूं
वह भी
इतना तय है।

भय ने
भय ने
मांगा खूब
अभय है।

•

जिया बहुत पर

दिया बहुत
पर,
सच पूछो तो
देना था जो
दिया नहीं।

लिया बहुत
पर, लेने लायक
लगता कुछ भी
लिया नहीं।

यों
करने को
किया बहुत
पर
करना था जो सचमुच
वह तो
किया नहीं

जीने को यूं
जिया बहुत
पर—सच पूछो तो
जीवन-सा कुछ
जिया नहीं। ❖❖

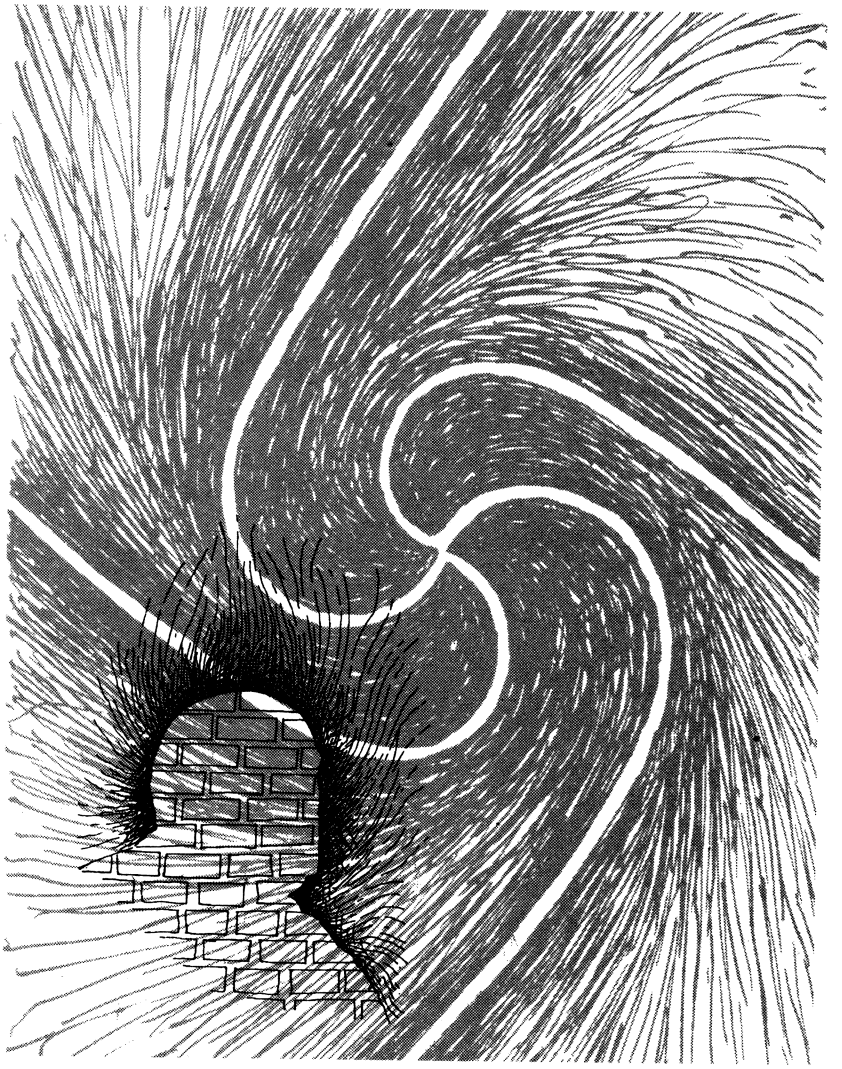

शीलन

भक्ति और प्रेम के द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ हो जाता है। आदमी के मन में जब भी किसी व्यक्ति या आदर्श के प्रति प्रेम और भक्ति उपजती है, तब ठीक उसी अनुपात में स्वार्थपरता का ह्रास होता है। प्रेमाभ्यास से मनुष्य क्रमशः सभी संकीर्णताओं के ऊपर उठकर विश्व में लीन हो सकता है। इसी से प्रेम, भक्ति या श्रद्धा—इनमें से किसी को भी चित्त में लाना आवश्यक है। मनुष्य जैसा सोचता है वैसा हो जाता है। अपने को 'दुर्बल, पापी' जो सोचते हैं, वे क्रमशः दुर्बल, पापी हो जाते हैं; जो अपने को शक्तिशाली और पवित्र मानते हैं, वे शक्तिशाली और पवित्र हो उठते हैं। 'यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'।

—सुभाषचन्द्र बोस

अहिंसा का जीवन-व्यवहार के लिए जो आचार है—वही जैन धर्म है और अहिंसा से जो फलित होता है—वही जैन दर्शन है। अहिंसा की परिपूर्ण साधना चारित्र की परिपूर्ण साधना है। अहिंसा की न्यूनाधिकता से चारित्र की न्यूनाधिकता मानकर दो श्रेणियां निर्धारित की गई हैं—अनगार धर्म और आगार धर्म। श्रमण अहिंसा का पूर्णतः पालन करते हैं और श्रावक अहिंसा का आंशिक अनुपालन करते हैं। जैन श्रावक अनर्थ-हिंसा का परित्याग तो करते ही हैं, इसके साथ अर्थ-हिंसा को भी कम करने का प्रयत्न करते हैं।

महावीर : सब-कुछ अहिंसात्मक

समणी भावितप्रज्ञा

ईसा-पूर्व छठी शताब्दी संपूर्ण विश्व के लिए महान क्रांति का युग माना जाता है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् मानते हैं कि इस युग में पूरे विश्व के चिंतकों की चिंतनधारा प्रकृति के अध्ययन और समस्याओं से मुड़कर समाज और जीवन की ओर हो गई थी। इस युग में अनेक क्रांतद्रष्टा महापुरुष विश्व में हुए। चीन में लाओत्से और कन्फ्यूशियस, ग्रीस में पाइथोगोरस, सुकरात और प्लेटो तथा ईरान या परसिया में जरथुस्त्र ने जिस समय महान विचारक्रांति की, उसी समय महावीर और बुद्ध ने व्यापक रूप से भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन को प्रभावित किया।

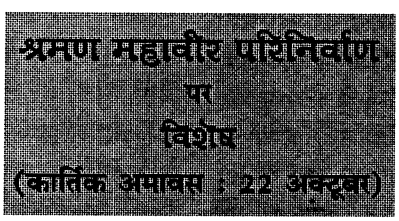

महावीर जैसी महान आत्मा का अवतरण चैत्र शुक्ला त्रयोदशी, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चंद्रमा का योग, मध्यरात्रि, विजयसूचक शकुन, ग्रहों की उच्च स्थिति में वैशाली गणतंत्र के अंतर्गत क्षत्रियकुंड के राजा सिद्धार्थ और उनकी पत्नी त्रिशला से हुआ। भगवान जब त्रिशला के गर्भ में आए, तब ज्ञातकुल में हिरण्य-सुवर्ण, धन-धान्य की अतिशय वृद्धि हुई। अतः शिशु का नाम वर्धमान रखा गया। भगवान महावीर का एक नाम ज्ञातपुत्र भी था। ज्ञातपुत्र यानी सिद्धार्थपुत्र महावीर। उन्हें सहज ज्ञान प्राप्त था, इसलिए वे समण भी कहलाए। चारण मुनि संजय और विजय के, वर्द्धमान को देखते ही, तत्त्व के विषय में संदेह का निवारण हो गया, तब उन्होंने वर्द्धमान को 'सन्मति' के नाम से संबोधित किया। भीम और अति-भयंकर परीषहों और उपसर्गों को सहन करने के कारण देवों ने उनका नाम श्रमण महावीर रखा।

श्रमण महावीर का जीवन-दर्शन त्याग-तपोबल से आपूरित था। उन्होंने राजसी वैभव से लेकर परिवार की समस्त सुख-सुविधाओं का परित्याग कर घोर तपस्या करते हुए शरीर के सुखों का परित्याग किया। ऐसे त्यागमय जीवन ने उन्हें ज्ञान की पराकाष्ठा—सर्वज्ञ की भूमिका तक पहुंचा दिया। भगवान महावीर अहिंसा के उपदेष्टा थे।

महावीर की वाणी में धर्म का स्वरूप अहिंसा है। आत्मविकास की भूमिका में उन्होंने सत्याग्रह को स्थान दिया। सत्याग्रह के बिना समता या वीतरागभाव का विकास नहीं हो सकता। महावीर ने जो-कुछ किया, वह अहिंसा के लिए किया। जो नहीं किया, अहिंसा की दृष्टि से जो अकरणीय था, वह नहीं किया। भगवान महावीर का आचार अहिंसामूलक, विचार अनेकांतदृष्टिमूलक और भाषा स्याद्वादमूलक थी। भगवान महावीर का आचार, विचार और भाषा, यानी सब-कुछ अहिंसात्मक था। मानसिक अहिंसा के लिए अनेकांतदृष्टि और वाचिक अहिंसा के लिए स्याद्वाद उनके जीवन के अंग थे।

हिंसा का संबंध प्राणवियोजन से है, यह स्थूल दृष्टि है। सूक्ष्म दृष्टि से जहां-जहां राग-द्वेष है, वहां-वहां हिंसा है। जहां विषमता होती है, वहां हिंसा निश्चित है। समता का सिद्धांत सामाजिक व्यवहार का मेरुदंड है। व्यवहार की भूमिका में समानता का जितना बर्ताव होगा, उतना ही प्रेम बढ़ेगा, हिंसा कम होगी। समता का अर्थ है—समभाव। न राग और न द्वेष। न आकर्षण और न विकर्षण। तराजू के दोनों पलड़े बराबर। जिस व्यक्ति या समाज का अंतःकरण समता से अभिस्नात हो जाता है, उसका व्यवहार विषम नहीं रहता। उसकी व्यवस्था विषमता से पूर्ण नहीं होती। भगवान ने कहा—कोई दुख नहीं चाहता, इसलिए किसी को दुख मत दो, न किसी को पीड़ा दो, न किसी को दास-दासी बनाओ, न हुकूमत चलाओ—यही अहिंसा है, यही समता है। अहिंसा के लिए समता और समता के लिए अहिंसा को जानना आवश्यक है।

आगमों में जहां हिंसा का विश्लेषण है, वहां आरंभजा, विरोधजा और संकल्पजा हिंसा का उल्लेख है। आरंभजा हिंसा का संबंध शरीर-धारण की अनिवार्यता से है। कृषि, व्यापार तथा दैहिक अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पृथ्वी, पानी, वनस्पति आदि जीवों की हिंसा आरंभजा हिंसा है। अपने प्रतिद्वंद्वी के आक्रमण से बचने के लिए तथा सुरक्षा, प्रतिशोध और आशंका के आधार पर आक्रमण या प्रत्याक्रमण के रूप में जो हिंसा होती है—वह विरोधजा हिंसा है। बिना कोई प्रयोजन या उद्देश्य—'मुझे इसका प्राण-वियोजन करना ही है'—इस प्रकार संकल्पपूर्वक प्राणवध का नाम संकल्पजा हिंसा है। सामान्यतः हिंसा के जितने निमित्त हैं, वे सभी हिंसा के इन तीन रूपों में सन्निविष्ट हो जाते हैं।

संकल्पजा हिंसा किसी भी परिस्थिति में वांछनीय नहीं है। सामाजिक प्राणी जीवनयापन और दायित्व-निर्वाह की दृष्टि से आरंभजा और विरोधजा हिंसा करता है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि आरंभजा और विरोधजा हिंसा हिंसा नहीं है। आवश्यकता और अनिवार्यता की स्थिति में भी हिंसा को अहिंसा नहीं कहा जा सकता। हिंसा कभी भी अहिंसा नहीं बन सकती। इसका मूलाधार दर्शन है, जैन दृष्टि है। जो जैसा है, उसे वैसा मानना सम्यक् ज्ञान है। उस पर श्रद्धा करना सम्यक् दर्शन है और उसका आचरण करना सम्यक् चरित्र है।

अहिंसा का जीवन-व्यवहार के लिए जो आचार है—वही जैन धर्म है और अहिंसा से जो फलित होता है—वही जैन दर्शन है। अहिंसा की परिपूर्ण साधना चारित्र की परिपूर्ण साधना है। अहिंसा की न्यूनाधिकता से चारित्र की न्यूनाधिकता मानकर दो श्रेणियां निर्धारित की गई हैं—अनगार धर्म और आगार धर्म। श्रमण अहिंसा का पूर्णतः पालन करते हैं और श्रावक अहिंसा का आंशिक अनुपालन करते हैं। जैन श्रावक अनर्थ-हिंसा का परित्याग तो करते ही हैं, इसके साथ अर्थ-हिंसा को भी कम करने का प्रयत्न करते हैं।

घटना गुजरात की है। राजा कार्य से बाहर गया। शत्रु ने अवसर देख आक्रमण किया। रानी को पता चला। तत्काल निर्णय देते हुए रानी ने कहा—सेना की बागडोर मैं संभालूंगी। सेनापति, जो जैन था—उसने रानी से निवेदन किया और कहा—आपको नहीं जाना है, हमें आदेश दें। मैं युद्धभूमि में सेना की बागडोर संभालूंगा। सेनापति युद्धस्थल में पहुंचा। सूर्यास्त हो गया, इसलिए लड़ाई न हो सकी। लड़ाई सुबह होने वाली थी। पाक्षिक प्रतिक्रमण का दिन था। सेनापति ने एकांत में प्रतिक्रमण किया। सूत्रपाठ का उच्चारण करते हुए सेनापति बोला—'एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया—मिच्छामि दुक्कड़ं'—यानी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, चींटी, कुन्थु, जूं, लीख आदि जीव की हिंसा की हो तो मिच्छामि दुक्कड़ं।

सेना सेनापति की शब्दावली को सुनकर चौंकी। सेना के जवानों ने सोचा—यह क्या? रानीजी के पास खबर पहुंची—क्या हमें मरवाना है? या देश को बर्बाद करवाना है? आपने जिसे सेनापति बनाया, वह तो निरा कायर है। एकेंद्रियादि जीवों के मारने का भी प्रायश्चित्त करता है। संपूर्ण जानकारी प्राप्त करके रानी ने सेनापति को बुलाया और पूछा—कल क्या कर रहे थे? सेनापति ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—मैं प्रतिक्रमण कर रहा था। मैं एकेंद्रियादि जीवों को मारने का प्रायश्चित्त कर रहा था। रानी ने कहा—फिर लड़ाई कैसे करोगे? सेनापति ने कहा—मैं जैन

श्रावक हूं। भगवान महावीर का अनुयायी हूं। आरंभजा, विरोधजा हिंसा से उपरत नहीं हो सकता, पर संकल्पजा हिंसा न हो जाए—इसलिए सावधान रहना चाहता हूं। मैंने प्रतिक्रमण में अज्ञात भूलों के लिए प्रायश्चित्त किया। मानसिक दृष्टि से संक्लेश व पीड़ा पहुंचाने की दृष्टि से पापकारी प्रवृत्तियों की निंदा की। पाक्षिक प्रतिक्रमण करना जैन श्रावक का प्रमुख कर्तव्य है, पर मैं देश का नागरिक हूं, और सेनापति भी। इस नाते मैं अपने कर्तव्य से विमुख कैसे हो सकता हूं? कल आप देख लेना कि युद्ध में क्या होता है? सुबह लड़ाई शुरू हुई। सेनापति ने वीरता दिखाई। फलस्वरूप शत्रु की सेना भाग खड़ी हुई।

महात्मा गांधी अहिंसा के उपासक थे। गांधीजी के पास एक व्यक्ति बहुत-सारी दातौन लेकर आया। अहिंसा-जीवी गांधी ने कहा—जरूरत से अधिक दातौन काटकर वृक्ष को अधिक कष्ट देने की क्या आवश्यकता थी? ऐसा ही दूसरा प्रसंग है। गांधी के पास रहने वाले व्यक्ति ने खटिया सरकाई। गांधी ने उसे देखा और कहा—क्या खटिया सरकाते तुमने नीचे देखा कि जीव हैं या नहीं? गांधी की दृष्टि में अनर्थ-हिंसा अक्षम्य थी ही, अर्थ-हिंसा का भी सीमाकरण था।

आनंद श्रावक का जीवन अहिंसा की भावना से ओतप्रोत था। आनंद श्रावक, जिसके यहां पांच सौ हल चलते थे। चालीस हजार गाय-बैल थे। चार करोड़ सौनये व्यापार में लगे हुए थे। चार करोड़ स्वर्णमुद्राएं जमीन में गाड़ी हुई थीं और इतनी ही स्वर्णमुद्राएं घर की साधन-सामग्री में, किंतु व्यक्तिगत जीवन संयमित था। आनंद श्रावक फलों में आंवला के अतिरिक्त अन्य फल नहीं खाता था। एक अंगोछे से ज्यादा काम नहीं लेता था। अर्थदंड और अनर्थदंड का उसे पूरा विवेक था।

भगवान महावीर ने अहिंसा को परम-धर्म कहा है। इस सत्य के पीछे यह सत्य छिपा हुआ है कि कषायमुक्ति परम-धर्म है। कषाय बीज है, हिंसा उसका फल है। कषायमुक्ति बीज है, अहिंसा उसका फल है। मूलस्पर्शी दृष्टि की अपेक्षा से कषायमुक्ति की साधना महावीर की महान देन है और परिणामस्पर्शी दृष्टि की अपेक्षा से अहिंसा महावीर की महान देन है। जितनी कषायमुक्ति होती है, अहिंसा उतनी ही विकसित होती है। भगवान ने कहा—अहिंसा सब जीवों के लिए कल्याणकारी है। उससे सबका कल्याण होता है। अहिंसा और अपरिग्रह, दोनों साथ-साथ चलते हैं। अपरिग्रह को छोड़कर अहिंसा को समझने का प्रयत्न करें तो भगवान महावीर की अहिंसा नहीं समझी जा सकती। भगवान से गौतम ने पूछा—भंते! मनुष्य को बोधि प्राप्त हो सकती है? भगवान ने कहा—हो सकती है। भंते! कैसे प्राप्त होती है? भगवान ने कहा—हिंसा और परिग्रह का त्याग करने से।

भगवान की वाणी में जहां अहिंसा है, वहां अपरिग्रह है और जहां अपरिग्रह है, वहां अहिंसा जुड़ी हुई है। आज सत्ता और धन के संग्रह के लिए हिंसा हो रही है। हिंसा की वृद्धि को रोकने के लिए सत्ता और धन के एकाधिकार को रोकना जरूरी है। परिग्रह की स्वेच्छाकृत मर्यादा अपेक्षित है। इच्छापरिमाण या व्यक्तिगत स्वामित्व की सीमा अपेक्षित है। आज के शासकों ने, राजनीतिज्ञों ने हिंसा की वृद्धि को रोकने का उपाय बताया है—दंडशक्ति। जबकि भगवान महावीर ने उसका उपाय बतलाया है—हृदय-परिवर्तन। हृदय-परिवर्तन होने से व्यक्ति अपने प्रति जागरूक बनता है। अपने प्रति जागरूक रहने से अहिंसा का विकास होता है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में—'अपने प्रति जागने का अर्थ है—अहिंसा और अपने प्रति सोने का अर्थ है—हिंसा। इसे उलटकर यों कहा जा सकता है कि 'पदार्थ के प्रति जागने का अर्थ है—हिंसा और पदार्थ के प्रति सोने का अर्थ है—अहिंसा।'

जब मनुष्य अपने प्रति जागता है, तब ममत्व का धागा टूटता चला जाता है। तब जीवन में अहिंसा स्वतः-स्फूर्त हो जाती है। अहिंसा का पूर्णतः पालन हो, विचार में अनेकांत हो, भाषा में स्याद्वाद हो तो पूरे विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है। ❖

विवेगे धम्ममाहिए

पृष्ठ 35 का शेष

क्रांतिकारी उपक्रम किए। उनके प्रवचनों में हर जाति और वर्ग के व्यक्ति सम्मिलित होते थे। राजस्थान के एक गांव में उनका प्रवचन हो रहा था, उस समय कुछ हरिजन बंधु भी बिछी हुई दरी पर आकर बैठ गए। वहां पहले से बैठे हुए लोगों ने उनको उठाने का प्रयास किया। अपने प्रवचन के दौरान ही गुरुदेव ने कहा—'मेरी सभा में जाति-पांति का भेदभाव उचित नहीं है। किसी भी व्यक्ति को जाति के आधार पर छोटा मानना मैं पाप मानता हूं। यहां से किसी को उठाने का तात्पर्य मुझे उठाना है।' उसके बाद इस प्रकार की घटनाओं की पुनरावृत्ति नहीं हुई।

ऐसे दृढ़ और क्रांतिकारी विचारों वाला प्रखर व्यक्तित्व था उनका। ❖

भगवान महावीर ने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार किया था और यह जाना था कि आत्मा की सत्ता त्रैकालिक है। भूत, भविष्य और वर्तमान में उसका अस्तित्व है। किंतु, जन-साधारण के लिए आत्मा का संज्ञान करना समस्या थी। क्योंकि आत्मा अरूपी है तथा इंद्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है। इसके अतिरिक्त भगवान महावीर के समय आत्मा के त्रैकालिक अस्तित्व के संबंध में मतभेद रहा है। कुछ विचारक आत्मा के वर्तमानकालिक अस्तित्व को स्वीकार करते थे, लेकिन उसके अतीत और अनागतकालिक को नहीं। कुछ त्रैकालिक अस्तित्व को स्वीकार तो करते थे, लेकिन जान नहीं पाते थे। आचारांग के प्रारंभिक सूत्र में यही समस्या प्रेषित हुई है।

आचारांग : वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में

डॉ. महावीरराज गेलड़ा

आचारांग सूत्र जैन आगम साहित्य का प्रमुख आगम है। इसके लेखन की सूत्र-शैली तथा वेद-छंदों में रचना इसकी प्राचीनता का द्योतक है। भद्रबाहु की निर्युक्ति, जिनदास गणि की चूर्णि एवं शीलंकाचार्य की टीका में इसके विभिन्न विषयों का विस्तार से वर्णन हुआ है। आचारांग में नौ अध्ययन (अध्याय) हैं। सातवां अध्ययन लुप्त है। अतः कुल अध्ययन आठ ही हैं, लेकिन क्रम-संख्या नहीं बदली गई है। प्रत्येक अध्ययन, उद्देशकों में विभक्त है। आठ अध्ययनों में कुल 44 उद्देशक हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने आचारांग के भाष्य की वर्तमान में रचना कर, इसके अध्ययन के कई नए आयाम स्थापित किए हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की दृष्टि में जैन आचार्यों ने आगमों की व्याख्याएं युग की आवश्यकतानुसार सदैव की हैं। दर्शन युग में, दर्शन के साथ संगति बैठाई। आज विज्ञान का युग है, अतः आज आगमों को नए संदर्भों में प्रस्तुत करना आवश्यक है। आगम और विज्ञान में कहां सामंजस्य है और कहां सामंजस्य नहीं है—इस ओर ध्यान केंद्रित करना जरूरी है।

पालि पिटकों से ज्ञात होता है कि भगवान महावीर के समय में श्रमणों की विचारधारा आत्मवादी-अनात्मवादी, क्रियावादी तथा अक्रियावादी के रूप में चल रही थी। जो कर्म और उसके फल को मानते थे—वे क्रियावादी थे, जो उसे नहीं मानते थे—वे अक्रियावादी थे।

महावीर और बुद्ध, दोनों क्रियावादी थे। अंतर यह था कि बुद्ध ने क्रियावाद के साथ आत्मवाद को स्वीकार नहीं किया, जबकि महावीर ने आत्मवाद को क्रियावाद से प्रकट किया। आचारांग सूत्र के प्रथम अध्याय में सर्वप्रथम आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करते हुए इस परिणाम पर पहुंचे कि जो आत्मवादी है, वह लोकवादी है और जो लोकवादी है वह कर्मवादी है, जो कर्मवादी है वह क्रियावादी है। अतः

यह अनुमान सही प्रतीत होता है कि महावीर के युग में श्रमणों की विचारधारा में क्रियावाद और अक्रियावाद का विवाद चरम सीमा पर रहा। इसी कारण आचारांग में क्रियावाद को सिद्ध करने के लिए आत्मवाद के अस्तित्व को पहले सिद्ध किया तथा आत्मा, लोक, कर्म और क्रिया के परस्पर संबंधों को स्थापित करते हुए कहा कि जब तक आत्मा के साथ कर्म हैं—तो क्रिया भी है, तो आरंभ-समारंभ भी हैं, हिंसा है। इसलिए श्रमण को हिंसा से बचने के लिए कर्म-समारंभ का परित्याग करना चाहिए। इस से विदित होता है कि विषय का विस्तार क्रमिक रूप से विकसित हुआ है।

नए परिप्रेक्ष्य में

वैज्ञानिक पद्धति में किसी शोधपूर्ण विषय का अध्ययन निरीक्षण और प्रयोग पर आधारित है। जिन चरणों में विस्तार किया जाता है, उसके प्रचलित मुख्य बिंदु निम्न हैं—

1. उद्देश्य, 2. उपकरण, 3. परिकल्पना, 4. समस्या, 5. प्रयोग, 6. निरीक्षण-परीक्षण, 7. सावधानियां, 8. निष्कर्ष, 9. व्यापकता और 10. संदेश।

आचारांग के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक के प्रथम 12 सूत्रों को हम यहां इस दृष्टि से देखेंगे कि क्या आचासंग की लेखन-शैली में वैज्ञानिक प्रयोग-विधि के अंश उपलब्ध हैं? एक प्रतिमान—नमूने के रूप में यहां एक प्रयोग प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

प्रयोग

उद्देश्य—यह ज्ञात करना है कि क्या आत्मा का अस्तित्व है?

उपकरण—पूर्वजन्म-पुनर्जन्म।

परिकल्पना—भारतीय चिंतन-धारा में पुनर्जन्मवाद अत्यंत प्रचलित सिद्धांत रहा है तथा उस में दृढ़ आस्था रही है। इसलिए आयारो में पुनर्जन्म के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसका एक विशिष्ट कारण है। पूर्वजन्म अथवा पुनर्जन्म का काल वह है, जब आत्मा वर्तमान के स्थूल शरीर को छोड़ चुकी होती है, लेकिन नए स्थूल शरीर को अभी ग्रहण नहीं कर पाई है। आत्मा का इस समय का स्वरूप पूर्ण प्राकृतिक है। केवल कार्मण-तेजस, सूक्ष्म शरीर साथ होते हैं। प्राकृतिक स्वरूप को जाने बिना आत्मा के अस्तित्व का अध्ययन संभव नहीं है। प्रत्येक पुनर्जन्म के समय आत्मा का अनादि स्वरूप प्रकट हो जाता है, अतः पुनर्जन्म के उपकरण के अलावा अन्य कोई क्रियाविधि, आत्मा के अस्तित्व को जानने के लिए सक्षम नहीं है।

समस्या

भगवान महावीर ने अपने विशिष्ट ज्ञान के द्वारा आत्म-तत्त्व का साक्षात्कार किया था और यह जाना था कि आत्मा की सत्ता त्रैकालिक है। भूत, भविष्य और वर्तमान में उसका अस्तित्व है। किंतु, जन-साधारण के लिए आत्मा का संज्ञान करना समस्या थी। क्योंकि आत्मा अरूपी है तथा इंद्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है। इसके अतिरिक्त भगवान महावीर के समय आत्मा के त्रैकालिक अस्तित्व के संबंध में मतभेद रहा है। कुछ विचारक आत्मा के वर्तमानकालिक अस्तित्व को स्वीकार करते थे, लेकिन उसके अतीत और अनागतकालिक को नहीं। कुछ त्रैकालिक अस्तित्व को स्वीकार तो करते थे, लेकिन जान नहीं पाते थे। आचारांग के प्रारंभिक सूत्र में यही समस्या प्रेषित हुई है।

सूत्र संख्या-1

आयुष्मान्! मैंने सुना है, भगवान ने कहा—इस जगत में कुछ (मनुष्यों) को यह संज्ञा नहीं होती, जैसे—

मैं पूर्व दिशा से आया हूं, अथवा दक्षिण दिशा से आया हूं, अथवा पश्चिम दिशा से आया हूं, अथवा उत्तर दिशा से आया हूं, अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूं, अथवा अधो दिशा से आया हूं, अथवा किसी अन्य दिशा से आया हूं, अथवा अनुदिशा से आया हूं।

सूत्रकार ने समस्या को बतलाया है कि कुछ मनुष्यों को अपने पूर्वजन्मों की ज्ञान-चेतना नहीं होती—वे नहीं जानते कि इस जन्म के लिए—(1) मैं किस दिशा से आया हूं? (2) मेरा अतीत क्या है?

ये दोनों प्रश्न आकाश तथा काल से संबंधित हैं, क्योंकि यहां दिशाओं में होने वाली गति का वर्णन हुआ है। दिशाओं को जानने के लिए आकाश को जानना आवश्यक है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार वस्तु का रेखागणित में प्रसार आकाश है। जो लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई-गहराई वाला त्रिआयामी है। पदार्थ के अस्तित्व को जानने के लिए आकाश के तीनों आयामों का वर्णन आवश्यक है। आयारो में भी गति करती आत्मा का रेखागणित आकाश में दिशाओं के द्वारा त्रिआयामी बताया है। आयारो में वर्णित दिशाओं को तीन आयामों में निम्न प्रकार से स्थापित किया

गया हैं—

1. पूर्व-पश्चिम - लंबाई
2. उत्तर-दक्षिण - चौड़ाई
3. ऊर्ध्व-अधो - ऊंचाई-गहराई

रेखागणित में तीनों आयाम समान होते हैं। अतः लंबाई, चौड़ाई, ऊंचाई के आयाम परस्पर में परिवर्तित किए जा सकते हैं।

इस दृष्टि से विज्ञान और आयारो, दोनों में ज़ो पद्धति पदार्थ और आत्मा के अस्तित्व को जानने के लिए ग्रहण की गई है, वह समान प्रतीत होती है। यह विशेष बात है कि आचारांग हमें आकाश के त्रिआयामी होने की सूचना ढाई हजार वर्ष पूर्व ही दे देता है।

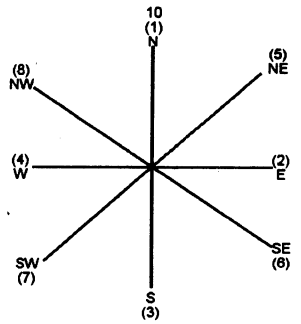

आठ दिशाओं का चित्र

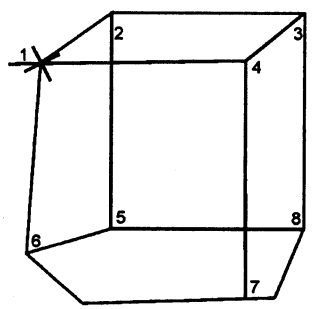

त्रिआयामी घन (Cube)

पुनर्जन्म के समय आत्मा अपने पूर्वस्थान से गति कर नए स्थान में जन्म लेती है। गति के लिए भौतिक राह का होना जरूरी है। भौतिक संसार की व्याख्या आकाश-काल के बिना समझी नहीं जा सकती। पूर्वजन्म-पुनर्जन्म एक घटना है। भौतिक विज्ञान में प्रत्येक घटना का वर्णन आकाश-काल सापेक्ष ही मान्य है। हम पाते हैं कि पुनर्जन्म की घटना के संदर्भ में आयारो में आकाश और काल का वर्णन प्रारंभ में ही इसलिए हुआ है कि आकाश-काल की सापेक्षता जाने बिना गति नहीं जानी जा सकती और गति के बिना आत्मा के अस्तित्व को नहीं जाना जा सकता। आत्मा अरूपी है, लेकिन इसकी गति से इसके अस्तित्व को पुष्ट करने का प्रयत्न हुआ है।

गति=दूरी/समय

इस विषय की क्रमबद्धता हमें सूत्र संख्या दो में मिलती है, जो निम्न प्रकार है—

सूत्र संख्या-2

इसी प्रकार कुछ (मनुष्यों) को यह ज्ञात नहीं होता—

मेरी आत्मा पुनर्जन्म नहीं लेने वाली है। अथवा मेरी आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली है। मैं (पिछले जन्म में) कौन था? मैं यहां से च्युत होकर अगले जन्म में क्या होऊंगा?

इस सूत्र में समस्या पूर्ण रूप से उभरी है कि— (1) मैं कौन था? (2) मैं क्या होऊंगा?

'मैं कौन था'—यह आत्मा की अतीत की प्रावस्था है तथा 'मैं क्या होऊंगा' यह भविष्य की प्रावस्था है। यहां यह प्रयास किया गया है कि अगर अतीत और अनागत में आत्म-तत्त्व का अस्तित्व सिद्ध हो जाता है तो वर्तमान में सिद्ध करने की समस्या नहीं रहेगी।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने इसे दूसरे शब्दों में लिखा है कि—हम गतिशील चक्र में वर्तमान समय को नहीं पकड़ सकते। अतीत और भविष्य, दोनों को पकड़ने से वर्तमान पकड़ा जा सकता है। पदार्थ-विज्ञान का भी यही सिद्धांत है कि तरंग के दो किनारों की स्थिति का पता लगा कर तरंग की वर्तमान तरंग-लंबाई (Wave-length) ज्ञात की जा सकती है। गतिमान तरंग में उसकी वर्तमान अवस्था नहीं जानी जा सकती।

उपर्युक्त वर्णन में हम पाते हैं कि यहां मूल समस्या अभी भी प्रकट नहीं हुई है कि—'मैं कौन हूं'?, केवल यही प्रश्न बने हैं कि मैं कहां से आया हूं और कहां जाऊंगा। इस विधि का विशेष महत्त्व है, क्योंकि यहां आत्मा के कालतंत्र के तीन अंशों की प्रावस्था जानने के लिए केवल दो अंशों को ही जानने की आवश्यकता है—भौतिक विज्ञान में इसे Two degrees of freedom वाला तंत्र कहते हैं।

आत्मा के अस्तित्व को जानने के लिए आचारांग में तीन प्रयोग प्रस्तावित हुए हैं, जो सूत्र संख्या तीन में बताए गए हैं।

सूत्र संख्या-3

कोई (मनुष्य)—

1. पूर्वजन्म की स्मृति से,

2. पर (प्रत्यक्ष ज्ञानी) के निरूपण से, अथवा

3. अन्य (प्रत्यक्ष ज्ञानी के द्वारा श्रुत व्यक्ति) के पास सुनकर, यह जान लेता है—

मैं पूर्व दिशा से आया हूं, अथवा दक्षिण दिशा से आया हूं, अथवा पश्चिम दिशा से आया हूं, अथवा उत्तर दिशा से आया हूं, अथवा ऊर्ध्व दिशा से आया हूं, अथवा अधो दिशा से आया हूं, अथवा किसी अन्य दिशा से आया हूं, अथवा अनुदिशा से आया हूं।

(1) स्मृति

भगवान महावीर अपने शिष्यों को पूर्वजन्म की स्मृति कराते थे। मेघकुमार की घटना जैन आगम साहित्य की प्रसिद्ध घटना है। आचारांग भाष्य में घटना का वर्णन निम्न प्रकार से हुआ है—

मेघकुमार मगध-सम्राट श्रेणिक का पुत्र था। वह भगवान महावीर के पास दीक्षित हुआ। जिस दिन वह दीक्षित हुआ, उसी रात्रि में फिर घर जाने को तैयार हो गया। प्रातःकाल भगवान के पास गया। भगवान ने कहा—मेघकुमार! तुम स्थान की असुविधा से निद्रा-भंग होने के कारण क्षुब्ध हो गए हो, पुनः घर जाने की बात सोच रहे हो। क्यों—यह ठीक है न?

मेघकुमार—हां, भंते! सही है।

भगवान—मेघकुमार! तू पूर्वजन्म में मेरुप्रभ नाम का हाथी था। एक बार जंगल में आग लग गई। जंगली जानवर तेरे घास-रहित मंडल में एकत्र हो गए। सारा मंडल जीव-जंतुओं से भर गया। पैर रखने को भी स्थान खाली नहीं रहा। तूने शरीर को खुजलाने के लिए पैर ऊंचा किया। एक खरगोश तुम्हारे पैर के नीचे आकर बैठ गया। तूने पैर नीचे रखना चाहा। खरगोश को नीचे बैठा देख तूने अनुकंपापूर्वक अपना पैर अधर रख लिया। ढाई दिन-रात तक तू अपने पैर को अधर में लटकाए रहा। दावानल शांत हो गया। पशु अपने-अपने स्थान पर चले गए। वह खरगोश भी वहां से चला गया। उस समय तूने पैर को नीचे रखना चाहा। किंतु, तुम्हारा पैर अकड़ गया था। तू धमाके के साथ नीचे गिर गया।

मेघकुमार! तूने हाथी के जन्म में इतना बड़ा कष्ट सहा और अब तू मनुष्य है और मनुष्य-जीवन में भी संयमी है। तू थोड़े-से कष्ट से क्षुब्ध हो गया! क्या यह उचित है? एक खरगोश की अनुकंपा के लिए तुम्हारा पैर अधर में लटकता रहा, क्या अब अनेक जीवों की हिंसा के लिए तुम्हारा चरण असंयम की भूमि पर टिकेगा?

भगवान की बात सुनकर मेघकुमार ईहा और गवेषणा की गहराई में डुबकी लेने लगा। उसे अपने पूर्वजन्म की स्मृति हो आई। भगवान के द्वारा पूर्वजन्म की स्मृति कराने पर उसकी श्रद्धा पहले से दुगुनी हो गई, उसका संवेग दुगुना हो गया। उसकी आंखों से आनंद के आंसू टपकने लगे। वह अपने क्षोभ को भूलकर संयम में स्थिर हो गया। उसने भगवान को नमस्कार कर कहा—'भंते! मैं अपनी दो आंखों को छोड़कर शेष सारा शरीर श्रमणों के लिए समर्पित करता हूं। वे मेरे इस शरीर से जो सेवा लेना चाहें, वह लें।'

पूर्वजन्म की स्मृति से आत्मा के त्रैकालिक होने की बात समझ में आ जाती थी, जिससे शिष्य-गण साधना में स्थित हो जाते थे। आधुनिक मनोविज्ञानकों ने भी कुछ ऐसी ही घटनाओं का संकलन किया है, लेकिन यह विज्ञान अभी सुस्थिर नहीं हुआ है। भौतिक विज्ञान में भी यह सिद्धांततः स्वीकार किया गया है कि प्रकाश की गति से तेज चलने वाले कणों का अगर उपयोग हो सके तो व्यक्ति को अतीत का ज्ञान हो जाएगा, क्योंकि उस स्थिति में काल दिशाहीन हो जाता है, लेकिन ऐसा वैज्ञानिक प्रयोग भी अभी तक नहीं हो सका है।

(2) पर-निरूपण

किसी आप्त (केवलज्ञानी), जिन्होंने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है, के साथ मनन-चिंतन अथवा प्रश्नोत्तर से भी पूर्वजन्म की स्मृति आ जाती है। इस संबंध में गौतम स्वामी का उदाहरण उल्लेखनीय है। उन्हें भगवान महावीर से चर्चा के समय यह ज्ञान हुआ था कि वे किस दिशा से, कहां से यहां आए हैं।

(3) अन्य निरूपण

बिना प्रश्न पूछे किसी अतिशय ज्ञानी के द्वारा स्वतः निरूपित तथ्य को सुनकर भी पूर्वजन्म की स्मृति हो जाती है।

वर्तमान में तीर्थंकर या श्रुतज्ञानी नहीं हैं, अतः इसके अभाव में पूर्वजन्म को जानना कठिन अवश्य है, किंतु वर्तमान में यह प्रयास किया जा रहा है कि अगर यह अनुप्रेक्षा की जाय कि—'मैं कहां से आया हूं'—तो संभव है कि ध्यान में स्वयं की प्रेक्षा करते हुए, पूर्वस्मृति आ जाए।

सावधानियां

अन्य निरूपण के प्रयोगों में यह सावधानी रखनी जरूरी है कि अनुप्रेक्षा में अवचेतन मन की धारणाएं तो कहीं प्रकट नहीं हो रही हैं, अतः इसके प्रयोग किसी निष्णात व्यक्ति के सान्निध्य में ही करने चाहिए, अन्यथा मस्तिष्क पर तनाव भी हो सकता है और मनोरोग भी हो सकता है।

भगवान महावीर ने जिस अहिंसात्मक आचार का निरूपण किया, उसका आधार आत्मा है। आत्मा का स्पष्ट बोध होने पर ही अहिंसात्मक आचार में आस्था हो सकती है। इसीलिए सूत्रकार ने प्रारंभ में आत्मा के अस्तित्व को पुनर्जन्म के प्रयोगों से स्थापित किया है।

सूत्र संख्या-4

इसी प्रकार कुछ (मनुष्यों) को यह ज्ञात होता है कि—

मेरी आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली है, जो इन दिशाओं और अनुदिशाओं में अनुसंचरण करती है; जो सब दिशाओं और सब अनुदिशाओं से आकर अनुसंचरण करता है—वह मैं हूं।

अतः इन प्रयोगों से यह ज्ञात हो जाता है कि पुनर्जन्म के समय आत्मा की दिशाओं और अनुदिशाओं में गति होती है। स्वयं की ज्ञानचेतना से पुनर्जन्म को जानना ही आत्मा के त्रैकालिक अस्तित्व को सिद्ध करने में सहयोगी है।

निष्कर्ष

इससे सिद्ध होता है कि आत्मा है और उसका त्रैकालिक अस्तित्व है।

पहले चार सूत्रों में आत्म-अस्तित्व का कथन समाप्त हो गया है, लेकिन किसी निष्कर्ष की व्यापकता सिद्ध न हो तो वह वैज्ञानिक क्षमता का निष्कर्ष नहीं कहलाता। अतः व्यापकता का सूत्र इसी प्रयोग का भाग कहलाता है।

व्यापकता

आत्मा का अस्तित्व जानने वाला व्यक्ति इस संपूर्ण समष्टि से संबंधित हो जाता है। सूत्र सं. 5 में यही प्रतिपादित हुआ है।

सूत्र संख्या-5

जो अनुसंचरण को जान लेता है, वही आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी है। जो आत्मा को जान लेता है, वह केवल आत्मवादी ही नहीं है, वह लोकवादी है, कर्मवादी है और क्रियावादी भी है। ये चारों वाद एक-दूसरे से गुंफित हैं।

आत्मा अरूपी है। वह इंद्रिय-प्रत्यक्ष नहीं है। अतः शरीर के माध्यम से ही अनुभव किया जाता है। पूर्वजन्म की स्मृति से व्यक्ति को यह बोध हो जाता है कि आत्मा का आकाश व काल से संबंधित जो अनुसंचरण है—अर्थात् विभिन्न जन्मांतरण एवं विभिन्न दिशाओं में अनुसंचरण होता है—यह लोक—पौद्गलिक जगत के कारण ही है। इस दृष्टि से आत्मवादी व्यक्ति स्वतः 'लोकवादी' हो जाता है। पौद्गलिक जगत से प्रभावित इस आत्मा में जब तक स्पंदन, प्रकंपन, क्षोभ आदि विविध भावों का परिणमन होता है, मोह और अशुभ योग प्रवृत्त होता है, तब तक कर्म आत्मा से बद्ध होते रहते हैं और आत्मा नाना योनियों में संचरण करता रहता है। इस कर्मबंध का कारण है—क्रिया। आत्मा से बद्ध कर्म की क्रिया ही आत्म-तत्त्व का आभास कराती है और यह सब लोक में घटित होता है। इस लोक में अपनी आत्मा जैसी अनेक आत्माएं हैं और पुद्गल द्रव्य भी हैं तथा प्रत्येक आत्मा का अन्य आत्माओं के साथ और पौद्गलिक जगत के साथ संबंध जुड़ा हुआ है। इस प्रकार पूर्वजन्म-स्मृति के आधार से जीव यह स्पष्ट जान लेता है कि—1. आत्मा त्रैकालिक है, 2. पौद्गलिक जगत है, 3. दोनों का संबंध कर्म रूप में परिणत होकर अनुसंचरण का कारण बनता है, 4. कर्मबंध का हेतुभूत क्रिया है।

चूंकि इस पूरे अनुसंचरण के चक्र में मूल कारण जीव की क्रिया है, अतः आत्मवाद को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से क्रियावाद की छठे सूत्र में विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गई है।

सूत्र संख्या-6

मैंने क्रिया की थी, करवाई थी (और करने वाले का अनुमोदन किया था, मैं क्रिया करता हूं, करवाता हूं और करने वाले का अनुमोदन करता हूं। मैं क्रिया करूंगा, करवाऊंगा) और करने वाले का अनुमोदन करूंगा।

उपर्युक्त सूत्र में 'मैंने' शब्द से तात्पर्य आत्मा से है। आत्मा ने ही क्रिया की थी, करवाई थी और अनुमोदना की थी। वर्तमान में तथा भविष्य में भी आत्मा ही क्रिया करेगा, करवाएगा और अनुमोदना करेगा। इस प्रकार पूर्वजन्म की स्मृति से व्यक्ति दिशाओं एवं अनुदिशाओं के माध्यम से आत्मा के अस्तित्व के प्रति आश्वस्त हो जाता है। क्रिया के पक्ष का इतना स्पष्ट तथा विस्तार में विवरण देने का कारण क्रियावाद के सिद्धांत की पुष्टि करना प्रतीत होता है।

आचारांग के सातवें तथा आठवें सूत्र द्वारा यह संदेश सार्वजनिक रूप से मिलता है।

सूत्र संख्या-7

लोक में होने वाले ये सब कर्म-समारंभ परिज्ञातव्य होते हैं—जानने और त्यागने योग्य होते हैं।

सूत्र संख्या-8

यह पुरुष—जो क्रिया को नहीं जानता और नहीं त्यागता—वही इन दिशाओं में अनुसंचरण करता है। यहां जैन दर्शन के संपूर्ण तत्त्व-ज्ञान का रहस्य कर्म-समारंभ और क्रियावाद में प्रकट हुआ है।

सूत्र संख्या-9

इस विषय (कर्म-समारंभ) में भगवान ने परिज्ञा (विवेक) का निरूपण किया है।

सूत्र संख्या-10

वर्तमान जीवन के लिए

प्रशंसा, सम्मान और पूजा के लिए

जन्म, मरण और जीवन के लिए

दुख-प्रतिकार के लिए (मनुष्य कर्म-समारंभ करता है)।

इस सूत्र में हिंसा के प्रेरक सात कारणों की चर्चा की गई है। इन सात कारणों को मुख्य रूप में दो बिंदुओं में बांटा जा सकता है—1. सुख, 2. दुख।

प्रशंसा, सम्मान व पूजा सुख के अंतर्गत आ जाते हैं तथा जन्म, मरण एवं दुख-प्रतिकार दुख के अंतर्गत सम्मिलित हो जाते हैं। वस्तुतः इस सूत्र के द्वारा आचारांग के ऋषि यह संदेश देना चाहते हैं कि व्यक्ति सुख-प्राप्ति के लिए या दुख-निवारण के लिए 'कर्म-समारंभ' करता है तथा सभी दिशाओं में अनुसंचरण करता है, क्योंकि वह क्रिया को नहीं जानता और उसका विवेक जगा नहीं है।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी सुख-दुख की मीमांसा करते हुए लिखते हैं कि दुख-सुख को हम समझें। एक बार दुख होता है, और वह कुछ समय बाद चला जाता है, लेकिन अगर उस दुख से अनुबंध कर लेते हैं, दुख के कारणों के प्रति शत्रुता स्थापित कर लेते हैं तो वह दुखानुबंध हो जाता है और उसकी परंपरा लंबी चलती है। यह सघन संबंध कई जन्मों तक भी चलता है। जिस व्यक्ति के साथ शत्रुता का अनुबंध हो गया, यह जब कभी मिलेगा तो अप्रियता का भाव उभर जाएगा। यह परंपरा अहितकारी है।

इसी प्रकार सुखानुबंध की भी परंपरा है। सुख तो अल्पकाल के लिए होता है और उसका संवेदन समाप्त हो जाता है, किंतु दुखानुबंध की भांति सुखानुबंध भी त्रैकालिक हो जाता है। इसे ही कर्मबंधन कहते हैं। यह कर्मबंधन ही पुनर्जन्म का कारण बनता है।

सूत्र संख्या-11

लोक में (होने वाले) ये सब कर्म-समारंभ परिज्ञातव्य होते हैं—जानने और त्यागने योग्य होते हैं।

सूत्र संख्या-12

लोक में (होने वाले) ये कर्म-समारंभ जिसको परिज्ञात होते हैं, वही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है।

इन निर्णायक सूत्रों में जैन दर्शन का सारभूत सिद्धांत फलित हुआ है कि कर्म-समारंभ को पहले ज्ञान से जानो, फिर आचार से छोड़ो। जब पुरुष कर्म-समारंभ के कारणों एवं उसके परिणामों को ज्ञान से जान लेता है तो फिर उससे आचार के द्वारा विरत हो सकता है। अतः प्रथम दस सूत्रों में कर्म-समारंभ के कारणों, परिणाम आदि की चर्चा करते हुए 11वें सूत्र में उसे जानने व त्यागने का सार्वजनिक संदेश दिया गया है। कर्म-समारंभ के त्याग को महत्त्व देते हुए अंतिम सूत्र में तो यह घोषणा की गई है कि जो इन कर्म-समारंभ को जानकर त्यागता है—वही सच्चा मुनि कहलाता है।

मुनि की परिभाषा

लोक में (होने वाले) ये कर्म-समारंभ जिसको परिज्ञात होते हैं, वही परिज्ञातकर्मा (कर्मत्यागी) मुनि होते हैं। इस प्रकार प्रथम उद्देशक में वैज्ञानिक ढंग से आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध किया है तथा मुनि को सावधान किया है कि वह कर्म-समारंभ से बचे।

सीमाएं

आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने वाला यह उद्देशक पहले चार सूत्रों में क्रमिकता से आगे बढ़ता है तथा पहले सूत्र और चौथे सूत्र के शब्द संकेत भी विषय की एकरूपता प्रकट करते हैं, लेकिन आगे के सूत्र द्वितीय उद्देशक की भूमिका के रूप में प्रकट होते हैं कि मुनि कौन होता है? यह हम जान पाते हैं—जब द्वितीय उद्देशक का अध्ययन करते हैं, जहां मुनि-जीवन की आचार-चर्या का वर्णन मिलता है।

इस उद्देशक में विषय का प्रतिपादन टुकड़ों में हुआ है। प्रायः दो-दो सूत्रों का अध्ययन संयुक्त रूप में करने से ही अर्थ का स्वरूप प्रकट होता है।

जैन दर्शन में ईश्वर, ब्रह्म आदि से संसार की उत्पत्ति नहीं मानी गई। सृष्टि का कोई कर्ता नहीं है। कर्मवाद और क्रियावाद की प्ररूपणा से आत्मा के संसार-परिभ्रमण का कारण आत्मा को ही माना क्योंकि वही कर्म की कर्ता है और भोक्ता है। इसे कर्म-समारंभ कहा है, क्योंकि कर्म ही हिंसा का कारण है। हिंसा से मुक्त हुए बिना कष्ट का निवारंण नहीं है। अतः श्रमण कर्म-समारंभ से जब मुक्त होता है तो उसकी आत्मा मुक्त हो जाती है। आत्मा के अस्तित्व का होना और उसकी मुक्ति की निश्चित प्रक्रिया की विधि के होने से आत्मवाद का सिद्धांत महावीर ने स्थिर किया।

इस उद्देशक का उपर्युक्त विधि से अध्ययन करने का सार यह है कि हम—(अ) त्रिआयामी आकाश, (ब) प्रयोग से पूर्वपरिकल्पना को सुस्थिर करना—जैसे वैज्ञानिक तथ्यों को समझें, जिनका आगम साहित्य के अध्ययन में बहुत महत्त्व है। ❖

रचनाकारों से

जैन भारती में नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के विचार-प्रधान व विश्लेषणात्मक लेखों और मौलिक कहानियों-कविताओं का स्वागत है, प्रकाशित-प्रसारित रचनाओं का उपयोग करना संभव नहीं होगा

अपनी रचनाएं कागज के एक तरफ साफ-साफ टाइप की हुई भेजें
हाथ से लिखी हुई रचनाएं भी कागज के एक ओर ही लिखी हों

लिखावट साफ-सुथरी, बिना काट-छांट के होनी चाहिए
कागज के एक ओर पर्याप्त हाशिया अवश्य छोड़ें

जीवन परिचय, व्यक्तित्व व कृतित्व पर लिखे गए लेख सीधे नहीं भेजें
ऐसे लेख हमारे मांगने पर ही लिखें व भेजें तो बेहतर होगा

समसामयिक विषयों पर विचारात्मक टिप्पणियों का भी हम स्वागत करेंगे
ऐसे लेख भी नैतिक-आध्यात्मिक स्तर के हों और विश्लेषणात्मक हों तो बेहतर होगा

महिलाओं, किशोरों और बाल-मन पर
आधारित रचनाओं का हम स्वागत करेंगे

आप चाहें तो कहानी-
कविता भी भेज सकते हैं

अप्रकाशित रचनाएं लौटाना अथवा इस बारे में
पत्र-व्यवहार करना संभव नहीं होगा

बेहतर हो, भेजी गई रचना की एक प्रति
रचनाकार पहले से ही अपने पास रखें

मुनियन ने आनंद को तैरने के कुछ आसान तरीके बताए। उसने नदी का वह छिछला भाग चुना था, जहां पानी रुका हुआ था। शुरू-शुरू में आनंद को डर लगा, पर बहुत जल्दी ही उसे सब कामों में मजा आने लगा। पंजों में मुंह मारती हुई मछलियों से उसे बहुत गुदगुदी हो रही थी। दोपहर तक वह थक चुका था, पर उसके उत्साह और खुशी में कोई कमी नहीं आई थी। वे दोनों दौड़कर ऊपर मंदिर में पहुंच गए। दादाजी ने उन्हें पोंगल (चावल, दाल और गुड़ से बना पकवान) व केले का, ईश्वर को चढ़ाये प्रसाद के रूप में, भोजन कराया।

अगली छुट्टियों में दुबारा

मीनाक्षी बालगणेश

छुक-छुक करती रेलगाड़ी एक छोटे-से स्टेशन पर आकर धीरे-से थम गई। सुबह की ठंडी हवा नीम के फूलों की सुगंध लिए बह रही थी। कहीं दूर मुर्गे की बांग सुनाई दे रही थी, जो सोए हुए गांव को नींद से जगाकर अपनी कर्तव्यपरायणता का परिचय दे रहा था। आकाश की लालिमा संपूर्ण प्राणीजगत के लिए आशाओं व सुखद आश्चर्यों से भरपूर एक और सुनहरे दिन के आगमन की घोषणा कर रही थी—हमारे दोस्त आनंद के लिए भी।

बालकथा

रेलगाड़ी से उतरने वाले थोड़े-से यात्रियों में आनंद और उसके पिताजी भी थे। चेहरे पर मुस्कान लिए एक कुली ने उनका सामान उठाया और बाहर की ओर चल दिया। आनंद के चेहरे पर अरुचि और निराशा के भाव स्पष्ट झलक रहे थे। वह चुपचाप अपने पिताजी के पीछे-पीछे चलने लगा। पिताजी कुली से बातें करने में लगे थे।

'अय्या! आप हमारे मंदिर के पुजारी के बेटे हैं न?' कुली ने पिताजी से पूछा—'आप क्या यहां छुट्टियां बिताने आए हैं? छोटे अय्या की माताजी कहां हैं? क्या वे आपके साथ नहीं आई हैं? यह आपका इकलौता बेटा है या और भी बच्चे हैं?'—उत्तर का इंतजार किए बिना ही उसने आनंद से पूछा—'बेटे, तुम किस कक्षा में पढ़ते हो? क्या अपने पिताजी की तरह तुम भी अध्यापक बनना चाहते हो?'

कुली के भोलेपन से पूछे गए प्रश्नों से आनंद और भी चिढ़ गया। किंतु, उसके मुंह से 'अध्यापक' शब्द सुनकर वह अपना आश्चर्य छिपा न सका। इस कुली को कैसे पता कि मेरे पिताजी सचमुच एक स्कूल में पढ़ाते हैं! आनंद ने सोचा—यह कुली मेरे पिताजी के परिवार को अवश्य अच्छी तरह से जानता है, तभी तो इस प्रकार के व्यक्तिगत प्रश्न पूछ रहा है।

—'तुम्हें कैसे मालूम कि मेरे पिताजी अध्यापक हैं?'—उसने पूछ ही लिया।

—'हो! हो! हो! तुम अभी बहुत छोटे हो, तुम्हें कुछ नहीं पता। मैं तुम्हारे पिताजी को बचपन से जानता हूं। तुम्हारे दादाजी गांव के पुरोहित हैं न, उन्होंने ही मेरा विवाह कराया था। तब तुम्हारे पिताजी तुम्हारी ही तरह दस वर्ष के थे।'—कहते-कहते कुली ने हमारे इंतजार में खड़ी बैलगाड़ी में हमारा सामान रख दिया।

—'चलो, बाद में मिलना पोन्नैया! मेरा बेटा अपने दादाजी के यहां छुट्टियां बिताने आया है। अगर तुम्हें थोड़ा समय मिले तो जरा इसे अपने गांव, मंदिर और पहाड़ों की शोभा दिखा देना। इसकी मां को अपने ऑफिस में बहुत काम था, इसलिए वह हमारे साथ नहीं आ पाई। मैं भी एक सप्ताह बाद लौट जाऊंगा, पर आनंद यहां डेढ़ महीने रहेगा।'—पिताजी ने कुली को पांच रुपए दिए और वह खुश होकर चला गया।

पिताजी ने आनंद को बैलगाड़ी में चढ़ने में मदद की और फिर खुद भी बैठ गए, किंतु आनंद अब भी उदास दिखाई दे रहा था। इस नीरस गांव में उसे अपनी छुट्टियां बितानी पड़ेंगी—ऐसा तो उसने सोचा भी नहीं था। आनंद चौथी कक्षा में पढ़ता था। उसका सहपाठी और उसका सबसे अच्छा दोस्त श्रीराम अपने माता-पिता के साथ यूरोप की यात्रा पर जा रहा था। नलिन अपने चाचा से मिलने सिंगापुर जा रहा था। राजा नेपाल जा रहा था, और एक वह था, जिसे मजबूरन इस सुस्त और बेकार-से गांव में अपनी छुट्टियां बितानी पड़ रही थीं। वह भी सिर्फ इसलिए कि यहां उसके दादा-दादी रहते हैं और उसके माता-पिता के पास इतने पैसे नहीं थे कि वे उसकी छुट्टियों पर अधिक खर्च कर सकें।

इन्हीं सब बातों को सोचकर आनंद की आंखों में आंसू भर आए, पर उसने उन्हें पलकों में ही रोक लिया। कहीं पिताजी को पता न लग जाए! वह जबरदस्ती इधर-उधर देखकर वहां की गतिविधियों में रुचि लेने की कोशिश करने लगा। कई खेतों में मूंगफली बोई हुई थी। कुछ पुरुष खेतों से घास-पात निकालकर निंदाई करने में व्यस्त थे और कीटनाशक दवाइयां छिड़कने के साथ ही नीम की दातौन भी करते जा रहे थे।

गाड़ीवान कंदन ने काफी दूर एक पहाड़ी की ओर इशारा किया, जिसके ऊपर एक विशाल शिखर वाला मंदिर बना था।

वह बोला—'अय्या, तुम्हें वहां जाना अच्छा लगेगा? नदी के बीचोंबीच बना वह मंदिर ईश्वर का है। कहते हैं, यह मंदिर वहां पांच सौ वर्षों से है। यहां तक कि...' कंदन के आगे बोलने से पहले ही पिताजी बोल पड़े—'हां, यह बात सच है, आनंद। यह बहुत प्राचीन मंदिर है। मुझे यह बताते हुए बहुत गर्व है कि दादाजी ही यहां पूजा-पाठ कराया करते हैं। नदी के बीच स्थित पहाड़ी के ऊपर यह मंदिर बना है और वहां पैदल भी पहुंचा जा सकता है, क्योंकि कई जगह पर पानी बहुत उथला है। अगर दादाजी तुम्हारे लिए किसी सिखाने वाले का इंतजाम कर सकें तो तुम यहां तैरना भी सीख सकते हो। मैं अपने दोस्तों के साथ पहाड़ी और छोटी-छोटी फल-वाटिकाओं में पिकनिक मनाने जाता था। छुट्टियों में काम तो हजारों हुआ करते थे, लेकिन समय बहुत कम था!'

पिताजी की आवाज में बच्चों जैसा उत्साह देखकर आनंद भाव-विह्वल हो उठा। उसने अपने पिताजी की ओर देखा और मुस्करा दिया।

थोड़ा आगे चलने पर भेड़ों का झुंड चरने के लिए जाता दिखाई दिया। चरवाहा अपने कंधों पर एक मेमने को बिठाकर लिए जा रहा था। कंदन ने उन्हें बताया—'यह मेमना अभी कुछ ही दिनों का है। बाकी झुंड के साथ यह अभी तेजी से नहीं चल सकता, इसलिए इसे कंधे पर लाया जा रहा है। वह जो बड़े काले धब्बे वाली भेड़ दिख रही है, वही इसकी मां है।'

भेड़ों के पास आते ही कंदन ने बैलगाड़ी रोक दी। चरवाहा उसे देखकर मुस्कराया। —'मुनियन, एक मिनट के लिए यह मेमना छोटे साहब को दे दो।'

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही कंदन नीचे कूदा,

मेमने को उठाया और धीरे-से उसे आनंद की गोद में रख दिया। उस कोमल मेमने को छूते ही आनंद खुशी से भर उठा। वह बच्चे के सिर को थपथपाने लगा। मेमने के इधर-उधर गरदन घुमाने से उसके गले में बंधी घंटी भी बजती थी। पिताजी ने बेटे को इन क्षणों का आनंद उठाने दिया और बोले—'कंदन, अब चलो। आनंद तो अभी यहां छह सप्ताह रुकेगा।'

अगले दिन सुबह चिड़ियों की चहचहाहट और आंगन में बंधी गायों के रंभाने की आवाज से आनंद की नींद खुल गई। वह भागता हुआ सामने वाले बरामदे में आया। वहां एक बहुत सुंदर कोलम (चावल के आटे से बनी रंगोली) उसका स्वागत कर रही थी। मुस्कराती हुई दादी ने गर्व से बताया—'आनंद, इसे कमलताल कहते हैं। इसे मैंने ही बनाया है। कल मैं तुम्हें रंगोली में जापानी पंखा बनाना सिखाऊंगी। इसमें तुम मंदिर का रथ भी बना सकते हो। ईश्वर मंदिर में जब रथयात्रा होती है, तब मैं यह बनाती हूं।'—यह कहते हुए दादी ने उसे गाय के दूध से भरा गिलास पकड़ाया। दूध बहुत ही स्वादिष्ट था।

मुनियन अपनी भेड़ों का झुंड लिए गुजर रहा था। वह यह सोचकर रुक गया कि हो सकता है, आनंद भी साथ चले। दादी-मां ने जल्दी से पहले से बनाई हुई एक दर्जन से भी अधिक इडलियां उन दोनों के लिए केले के एक पत्ते में लपेट दीं। वे ईश्वर मंदिर के किनारे वाले नदी के तट पर पहुंच गए। मंदिर के उस शांत वातावरण में ईश्वर अपनी जगह शोभायमान थे। नदी के बहने का धीमा स्वर या कभी-कभी मधुर स्वर में गाती मैना और भेड़ों के मिमियाने के अतिरिक्त वहां कोई आवाज नहीं थी। पूजा के फूल लिए दादाजी वहां अभी आने ही वाले थे।

मुनियन ने आनंद को तैरने के कुछ आसान तरीके बताए। उसने नदी का वह छिछला भाग चुना था, जहां पानी रुका हुआ था। शुरू-शुरू में आनंद को डर लगा, पर बहुत जल्दी ही उसे सब कामों में मजा आने लगा। पंजों में मुंह मारती हुई मछलियों से उसे बहुत गुदगुदी हो रही थी। दोपहर तक वह थक चुका था, पर उसके उत्साह और खुशी में कोई कमी नहीं आई थी। वे दोनों दौड़कर ऊपर मंदिर में पहुंच गए। दादाजी ने उन्हें पोंगल (चावल, दाल और गुड़ से बना पकवान) व केले का, ईश्वर को चढ़ाये प्रसाद के रूप में, भोजन कराया।

दोपहर के भोजन के बाद, उन्होंने मंदिर के शीतल फर्श पर लेटकर आराम किया और उनकी भेड़ें भी जामुन के पेड़ के नीचे विश्राम करती रहीं। वैसे तो दादाजी दोपहर में घर चले जाया करते थे, मगर आनंद को मंदिर व उसकी सुंदर मूर्तिकला दिखाने के लिए रुक गए। प्राचीन तमिल भाषा में अंकित शिलालेखों में से एक पर लिखा हुआ था कि यह मंदिर चोलवंश की एक रानी ने बनवाया था। रानी ने नदी के मध्य में ईश्वर की पूजा के खर्च के लिए जमीन दे दी थी। यह भगवान इसी नाम से जाने जाते थे। दादाजी के पास उस मंदिर की प्रत्येक मूर्ति के विषय में बहुत ही मनोरंजक कहानियां थीं। साथ ही, बीच-बीच में वे प्राचीन धार्मिक पुस्तकों व हास्य-उपाख्यानों में से भी घटनाएं सुनाते जा रहे थे। शाम होने पर भी आनंद का मन घर लौटने को बिलकुल नहीं कर रहा था।

दादाजी के घर पहुंचकर आनंद ने मेमना मुनियन को दे दिया। उसे वह चरागाह से सारे रास्ते अपने कंधों पर रखकर लाया था। मुनियन ने अगले दिन अपने बेटे को साथ लाने का वादा किया। उसने कहा कि वह आनंद यानी छोटे अय्या को कंचे और अलग-अलग आकार और लंबाई के डंडों का खेल 'गिल्ली' भी सिखा देगा।

आने वाले दिनों में आनंद के पास मजे करने की कई-सारी चीजें हो गई थीं। चांदनी रात में, गांव के लड़के कबड्डी खेलते थे। जल्द ही आनंद ने भी उनके साथ खेलना शुरू कर दिया। जिस समय दादाजी के खेतों में मूंगफलियां उखाड़ी जा रही थीं, उस समय गाना गाते किसानों के साथ मूंगफलियां उखाड़ते और कच्ची मूंगफलियां खाते हुए आनंद भी कुछ घंटे वहीं रहता। आनंद ने गाय का दूध दुहना भी सीख लिया था। लगभग सौ आमों को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उसने दादी मां को आम का अचार बनाने में भी मदद

की। यह अचार पूरे साल-भर के लिए काफी होता था। आनंद ने तय किया कि वह भी थोड़ा-सा अचार अपने साथ शहर लेता जाएगा।

आनंद का एक और खास काम था। वह था, रोज किसानों के बच्चों को अपनी अंग्रेजी की कहानी की किताब से कहानियां सुनाना। रेपुंजल, स्लीपिंग ब्यूटी, स्नो-व्हाइट और सात बौनों आदि की कहानियां वह सुनाया करता था। रात को दस बजे से लोक-नाट्य—'थेरूकुथु'—दिखाया जाता, जो सुबह पांच बजे तक चलता। यह हरिश्चन्द्र के जीवन से संबंधित नाटक था। आनंद को भी जब इसमें अभिनय करने का मौका दिया गया तो उसकी खुशी की सीमा नहीं रही। बहुत भड़कीला मेकअप, जोर-जोर से गाना और खूब जश्न मनाना हुआ। सचमुच बहुत मजा आया! इसी तरह कुछ-न-कुछ होता रहा! सभी कुछ करने के लिए पर्याप्त समय ही नहीं मिलता था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो इस गांव में जीवन कभी थमता ही नहीं है।

शहर लौटने का समय आ गया था, क्योंकि अब स्कूल खुलने ही वाले थे। शहर से उसके पिताजी भी उसे लेने आ गए थे। आनंद अब गांव के अपने दोस्तों से एक-एक करके मिल रहा था और विदा ले रहा था। कंदन के बेटे सुब्बू ने उसे अपनी ओर से उपहार के रूप में नारंगी, हरे और पीले रंग के तीन बड़े-बड़े कंचे दिए। घर ले जाने के लिए एक छोटे बोरे में सूखी मूंगफलियां भी थीं।

छोटा-सा शैतान बछड़ा रामू भी उदास हो गया था जब आनंद उसके पास विदा लेने गया और उसे प्यार करने लगा था।

—'दादी-मां, जाने से पहले मैं एक बाल्टी पानी और खींचकर जाऊंगा', यह कहकर आनंद ने बड़ी कुशलता से मोटी रस्सी घिरनी में डालकर कुएं से एक बाल्टी पानी भरा। उसने बाल्टी का पानी बहुत प्यार से सब्जियों के बगीचे में डाल दिया।—'सुब्बू, तुम इस बगीचे का ध्यान रखोगे न?' स्टेशन ले जाने के लिए खड़ी कंदन की बैलगाड़ी में चढ़ते हुए आनंद की आंखों में आंसू भर आए।

पिताजी ने बड़े प्यार से उसकी ओर देखा और बोले—'आनंद, अब तुम्हें पता लगा कि पं. नेहरू ने क्यों कहा था कि भारत की आत्मा इसके गांवों में बसती है? हां, यह बात जरूर है कि अगर मेरे पास धन होता तो तुम भी शायद संसार के बहुत-से सुंदर शहरों को देख लेते और बहुत-सी नई बातें सीखते। किंतु गांव के शांत, नियमित, पर बेहद सरल जीवन से लिए गए अनुभवों का कोई विकल्प नहीं। मित्रता, प्यार, दूसरों के समय की कीमत, एक-दूसरे के लिए आदर व सम्मान, अपने पड़ोसियों का खयाल रखना जैसे जीवन के मूल्य केवल यहीं देखने को मिलते हैं।'

आनंद अपने पिताजी के गले से लिपट गया और भावुक आवाज में बोला—'मेरी छुट्टियां बहुत अच्छी रहीं, पिताजी। क्या मैं अगली छुट्टियों में दुबारा यहां आ सकता हूं?'

—'क्यों नहीं?' पिताजी ने धीरे-से हंसते हुए कहा। तभी रेलगाड़ी ने जोर से सीटी दी, मानो वह उनके उत्तर का समर्थन कर रही हो। रफ्तार पकड़ती हुई रेलगाड़ी शहर की ओर चल पड़ी थी। ❖

स्मृतिजीव्या

पृष्ठ 41 का शेष

लैम्प, जो अभी तक अच्छी तरह जल रहा था, सहसा भभकने लगा। भभकने की आवाज 'स्टडी' में भर उठी और तभी वह बुझ गयी।

वस्तुतः मैं फिर श्रीमती डेविस के पास न जा सका। मुझे जाने क्यों ऐसा लगा कि मैं थककर जिस पत्थर के ढूह पर बैठ गया था, उसे न जाने किस अज्ञात प्रेरणावश मैंने हटाया तो वहां एक गुफा का मुंह निकल आया था। कौतूहलवश मैं उसमें गया अवश्य, लेकिन तत्काल ही लौटकर उस ढूह को पुनः उसी मुंह पर रखकर लौट आया हूं। किसी गुफा से वापस अपने को लौटा लाने का अर्थ किसी दिन आप समझ सकेंगे? ❖

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

With best compliments from :

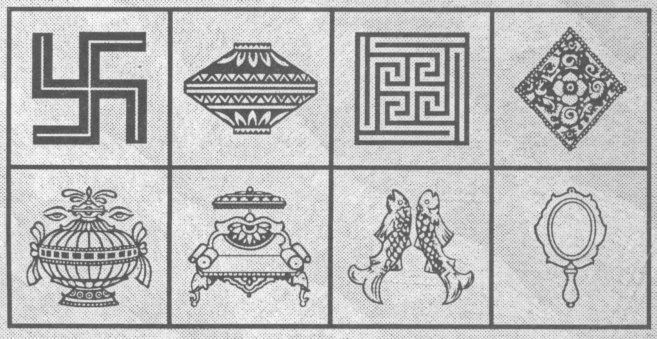

HEMRAJ SAMSUKHA

Vineet Texfab Ltd.

101, Mamulpet, Bangalore 560053

Phone : (O) 22872355, 22253276, (R) 25534815

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009.
Phone : (079) 23276252, 23276204-05

प्रेषण दिनांक 28 सितंबर, 06 • Licensed to Post without Pre-Payment Under Licence No. RJ/WR/PP/Bikaner13/2004-06
जैन भारती, अक्टूबर, 2006 भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/06-08

With best compliments from :

KALYANI TEA CO. LTD.

MAKERS OF FINEST QUALITY OF
GREEN / DRTHODOX / CTC
TEAS

Head Office :
16, Bonfield Lane, KOLKATA 700001
Phone & Fax : (033) 2242-6141

Garden :
Kenduguri Tea Estate
P.O. Rajgarh, Dist. Dibrugarh, Assam
Phone : (03754) 276646 Fax : (03754) 276627

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।